क़ानून ख़्याल

विचार शक्ति अथवा मनोविज्ञान

लेखक

महऋषि शिवव्रतलाल वर्मन एम० ए०

प्रकाशक

शिव साहित्य प्रकाशन मंडल

पो० दयाल नगर जिला अलीगढ़ उ० प्र०

—: कर्म-भोग :—

हम जहाँ जाते हैं वहाँ ही मनुष्यों को कहते हुये सुनते हैं कि हाय ! हमको तो हानि हुई ! हमारा किसी ने भी मान न किया। खेद है हमारा सब किया कराया अकारथ गया और हमारा रोना-धोना कुछ काम न आया। इस प्रकार का कहना अधिकतर मनुष्यों का स्वभाव बन गया है। वह आदि से लेकर अन्त तक यही दुखड़ा रोते रहते हैं। उनके जीवन में कठिनता से ऐसा समय आता होगा जब वह असफलता, अपमानता, हानि और अपनी असन्तुष्टता का दुखड़ा न सुनाते रहते हों। पर यदि विचार किया जाय तो वास्तव में संसार उनकी सेवा का बदला बड़ी उदारता और बड़े विशाल रूप से दे रहा है।

स्वस्थ हों या धनी, संसार के कोष से चाहे कितने ही रत्न प्राप्त हुये हों, सम्मान, ख्याति प्रतिष्ठा सब कुछ प्राप्त हो जाय, पर यह झींकना स्वाभाविक है। कोई कहता है उन सगे सम्बन्धियों के साथ हज़ार गुण किये जायँ पर यह अहसान नहीं मानते। पर सार यह है कि अच्छी से अच्छी चीज़ जो तुम दुनियाँ को दे रहे हो, संसार उसी उदारता और उससे भी अधिक तुम को बदला दे रहा है। पर इस भेद के समझने वाले, इस बात को जानने वाले और इस भेद से शिक्षा लेने वाले बहुत कम हैं। और सब उसी दुख का राग अलापते हुये उसी एक धुन में लगे रहते हैं।

हम में से अधिक मनुष्यों ने अपना सारा जीवन किसी न किसी सुकर्म में अर्पण कर रक्खा है। वास्तव में हर दृष्टि से उनको इसका फल मिल चुका है। उनको उनकी योग्यता के अनुकूल उपहार मिल चुका, उनका सम्मान होने लगा। उनकी बात का आदर होने लगा। उनकी बात का आदर किया जाता है। उनकी कीर्ति

बढ़ गई। यह सब कुछ है। पर वह समझते हैं कि उनका किया कराया निष्फल गया। इनकी तपस्या का फल नहीं मिला। उनकी महनत की यथोचित सराहना नहीं की गई। इसी प्रकार वह रोते-झीकते किसी ऐसी मनोकामना के ध्यान में, जिसको वह खुद नहीं समझते, दुखी रहते हुये ठोकरें खाते हैं। और संकट और आपदाओं के थपेड़ों से उनका मुख लाल हो जाता है। और अपने जीवन के कार्य को असफल जान कर वह एक दिन खाट पर पड़ जाते हैं, मर जाते हैं। और मरते समय भी कहते हैं दुनियाँ ने इनके साथ यथा योग्य और अच्छा व्यवहार नहीं किया। और उनकी कृत्य-अर्थता और उनके परिश्रम का बदला नहीं मिला। अपने विचार में तो उन्होंने अपना सर्वस्व लुटा दिया। पर उनकी दृष्टि में उनको क्या मिला ? मनुष्यों की एक श्रेणी यह है।

इसके अतिरिक्त एक दूसरी श्रेणी भी है। उनका जीवन दुख और हानि से रहित है। जो कुछ वह चाहते हैं उसी समय हाजिर है। केवल हाथ लगाने की देर है मिट्टी उनके छूते ही सोना बन जाती है। प्रकट रूप में वह परिश्रम कम करते हैं। पर मनोकामनायें पूरी हो जाती हैं। वे उदासीन हैं। न वह दान देते हैं न किसी की मदद करते हैं। सुख चैन के सिवाय और कोई विचार उनके पास नहीं फटकता। हर स्थान पर उनकी मनोरंजन के सामान मौजूद हैं। उनको निरंतर आवश्यकताओं की सामग्री मिलती रहती है। यह भी एक दिन खाट पर लेट रहे और आँखें मूंद लीं। पर दोष देने का एक शब्द भी वाणी से न निकाला। न इस समय की चिन्ता न आगे की, जो समय बीत गया बीत गया। न इनको किसी ने सताया न उनकी कोई कामना ही थी न किसी को कुछ दिया न किसी का भय किया मिट्टी में मिलने को तैयार जहाँ से आये वहाँ को लौट गये।

"खाक से पैदा हुये और खाक ही में मिल रहे"

लाली मेरे लाल की जित देखु जित लाल।
लाली देखन मैं चली मैं भी हो गई लाल।
हिम से पानी होगया पानी भी हुआ आप।
जो पहले था सो भया प्रगटा आप ही आप।
पूरे सों परिचय भया दुख सुख मैला दूर।
जम सों फाँसी कट गई साईं मिला हजूर।
कबीर जब हम गावते तब जाना गुरु नांह।
अब गुरु दिल में देखते गावन को कछु नांह।
जा बन सिंह न बीचरे पक्षी उड़ नहीं जाय।
रैन दिवस की गम नहीं रहा कबीर समाय।

और देखो संसार उनका किस प्रकार बराबर मान व सत्कार करता रहा। मरने के बाद उनकी पुण्य स्मृतियाँ स्थापन की गईं और उनको अमर बनाने का यत्न किया गया।

उनके सिवाय एक तीसरी श्रेणी भी है। जो लेने और देने के नियम बद्ध है। उनके जीवन को प्रेम व प्यार की सेवा ने सुन्दर बना रक्खा है। वह सब को प्रेम करते हैं। लोग उनके भी प्रेम व आदर का सम्मान करते हैं। वह भी जीवन व्यतीत करते हैं और इस बात को भले प्रकार जानते हैं कि दुनिया ने पूरा-पूरा बदला चुका दिया। उन्होंने अपना हृदय खोल कर दुनिया के साथ उदारता और प्रेम का व्यवहार किया। और संसार ने भी वैसी ही उदारता से उनका एहसान माना। और वह भी इसको अपने चित्त में मानते हुये अन्त में अपने निज रूप से जा मिले जो सामान्य चेतन्य है और जहाँ लेने देने के व्यवहार का अभाव है।

अब प्रश्न यह है कि इनमें भिन्नता क्यों है? इस बदला देने का भेद क्या है? क्या यह सच्चे हैं कि विश्व में परिश्रम का

फल व स्वाद नहीं मिलता ? क्या यथार्थ में कभी इसको बोते समय फसल काटने की आशा नहीं रहती ? क्या हानि जीवन की साथी है ? और क्या यह सम्भव है कि जीवन में ऐसे चरित्र दृष्टि गोचर हों ? उत्तर मिलता है नहीं।

कर्म प्रधान विश्व रच राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा।
तुलसीदास।

करनी करे तो क्यों डरे क्यों पाछे पछितय।
बोये पेड़ बबूल के आम कहां से खाय॥

ऐसा कभी हो ही नहीं सकता ! यह अटल नियम है। जिस बीज से तुम सम्बन्ध रखते हो उससे कुछ न कुछ ले मरते हो। और रचना का सर्व व्यापक अटल नियम कभी इसका उल्लंघन नहीं करता। जिसके फलस्वरूप वह अपनी उदारता और दया का दृश्य न दिखाता हो। सूर्य पृथ्वी से तरीका कर (Tax) लेता है और वर्षा ऋतु में कैसी उदारता से मेघ की झड़ी लगाता है। लेना और देना दोनों साथ-साथ चलते हैं। और देने के अन्तर उसके पत्युत्तर (वापसी) के नियम का भेद सर्व व्यापक रूप में छिपा हुआ रहता है। जिसका ज्ञान हर व्यक्ति के लिए आवश्यक है। जिससे उसमें शांति और सन्तोष आवे।

कोई करनी निष्फल नहीं होती। करनी के निष्फल होने का विचार एक भ्रम है। हर 'दान' के साथ उसका फल मिलता है। और यह फल उस 'दान' का परिणाम है। जिसको हम निष्फल हुआ जान लेते हैं। लेकिन वह हमारे जीवन में एक विशेष रूप में प्रगट होता है।

कभी न समझो 'कर्म निष्फल जाता है'। कहा गया है "जैसा करोगे वैसा पाओगे।" "उस हाथ दो इस हाथ लो।" "कर्म प्रधान विश्व कर राखा।" जो जैसा बोता है, वैसा काटता है।

फल की कुंजी हमारी हस्ती के साथ गुत्थी व बंधी हुई रहती है। जिस विषय से हमारा जिस हद तक सम्बन्ध रहता है हम उसको उसी हद तक पा लेते हैं। और हमारा जीवन इस फल की प्राप्ति के प्रगट होने का एक विचित्र प्रतिविम्ब है। जिससे हमने जानबूझ कर या अनजान में सम्बन्ध जोड़ा था। स्वप्नावस्था की गति इस पर भले प्रकार से प्रकाश डालती है।

जो उच्च जीव अधिकारी हैं वह स्थाति और प्रति फल से वंचित नहीं रह सकते। सम्भव है वह फल उसी समय मिल जाय और वह शक्तियां जो गुप्त रूप में हमारी लगन को जारी रखने में अंग संग रहती हैं उनको प्रगट करने में भी सहायक होजाँय। और यह भी सम्भव है कि इस फल की प्राप्ति में हमको हजारों जन्म का इन्तजार करना पड़े। नियम मौजूद है। वह समय पर अपना फल देने का प्रबन्ध करता है और जो प्राणी इस नियम को समझते हैं वह हमारे भाव को समझने में भूल न करेंगे।

जो कुछ हमको मिला है अथवा नहीं मिला है वह उस विशेषता और अपेक्षा का पूर्ण चित्र है। जिस सम्बंध विशेषता, और अनुपात के साथ हमने ब्रह्मांडी मन व ब्रह्मांडी चैतन्यता से नाता जोड़ रक्खा है। और जब कभी प्राणी रोटियों को जल में बखेरता हुआ जाता है वह कुछ दिनों बाद उनको अपने घर पावेगा। जिसको भूल से जन साधारण 'हानि' कहते हैं। वह एक नियम है जो जीवन की पदत और पूर्ण बनाने में एक विशेष भाग लिया करता है। जिस प्रकार तुम्हारा पिंडी मन है वैसे ही एक ब्रह्मांडी मन भी है। हर प्राणी ने उससे पिछले जन्म में प्रतिज्ञा कर रक्खी है जिसकी वर्तमान व आगे के जन्मों में पूर्ति होती रहती है। कभी सम्भव नहीं है कि उसके नियम में भूल या कमी हो। वह एक ऐसा न्यायकारी है कि जिसका फैसला

अंतिम होता है। और जिस प्राणी को तुम बिना फल पाये हुये जान रहे हो या बिना श्रम के भोग भोगते देख रहे हो, यह सब उसी नियम के आधार पर है। जल्दी या देर से यह अटल निर्णय अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता।

जो प्राणी (अथवा जीव) किसी प्रकार के विशेष विचार का भूत काल में ग्रण कर लेता है, जो उसका स्वाभाविक गुण बन जाता है। वह उन से सम्बन्ध रखने वाली वृत्तियों को शनैः-शनैः उत्पन्न व एकत्र करने की धुन में लग जाता है। जिस समय काम शुरू होता है उस समय इन सम्बन्धित वृत्तियों का पता तक नहीं रहता। धीरे-धीरे वे खुद खिंची चली आती हैं। जैसे यदि किसी में प्रेम पैदा होगया वह धीरे-धीरे सचाई, ईमानदारी, बुद्धिमानी और सब आत्म उन्नति करने वाले भावों का भंडार बनता जायगा। इत्यादि-इत्यादि।

हम किस वस्तु की कमी अनुभव करते हैं। किस बात की हमको आवश्यकता रहती है। और हम बिन जाने उस इच्छा के क्रम और (सिलसिले) में वर्षों व्यस्त रहते हैं। और शनैः-शनैः इस रचना में उसके लिये हम एक स्थान बनाया करते हैं। कुछ समय पश्चात् क्योंकि हमारी उस इच्छा में निबलता आजाती है, उसकी फल प्राप्ति में देर होजाती है। हमारा उत्साह धीमा और हमारा मन निराश हो बैठ जाता है। पर यह संसार या रचनात्मक क्रम उसको नहीं भूलता। वह एक स्थान में पड़ी रहती है, और ऐसे समय में विचित्र ढंग से प्रगट हो जाती है जिसका हमको लेश-मात्र भी अनुमान नहीं होता। कभी-कभी ऐसा होता है हमको उस इच्छा के फल मिल जाने से हमारा जीवन ही कष्टमय हो जाता है। उससे अलग होना चाहते हैं पर याद रक्खो प्रकृति तुम्हारे भाव, विचार, अनुभव, तुम्हारे मन, वचन और कर्म उस

का चित्र गुप्त रूप से खींचती रहती है और जिसकी तुमने आदि में इच्छा की थी वह अन्त में मिल कर रहती है। तुम इन्कार कहो हम नहीं चाहते। पर वह तुम्हारे माथे मढ़ी जायगी। क्योंकि भाग्य का लिखा अमिट है।

तुलसी जो होतव्यता तैसी मिले सहाय।
आपु न आवे ताहि पै ताहि तहाँ ले जाय॥

शीशा साँचे में ढल गया। ताने बाने के तार बिछ गये और अब जीवन के सम्बंध उसी के अनुक्रम से निकलेंगे।

जिस वस्तु की प्राणी को आदि में लालसा होती है उसके लिये वह हित चित से काम में लग जाता है। अथवा यों कहो उसके लिये वह प्राणी विशेष रूप से यत्न करने में, उसकी प्राप्ति के साधन में लग जाता है, या यों कहो कि उसके लिये उसका जीवन ही अर्पण हो जाता है और फिर उन वस्तुओं के साथ उसका सम्बन्ध जुड़ जाता है जो उससे सम्बन्धित होने वाली है। जैसे किसी को कारीगर या चित्रकार बनने की अभिलाषा है तो वह वैसी ही संगति ग्रहण करेगा। उसी प्रकार की शिक्षा का अधिकार प्राप्त करता जायगा। यहाँ भी वह ही अटल नियम काम करता है। आदि में विशेषता का संस्कार है। फिर पंथ का चलना शुरू होता है। आने या अनजाने कठिनाइयाँ, निराशायें, मेहनत, स्वाध्याय, सत्संग, भले, बुरे, कर्म, मान प्रतिष्ठा की लालसा आदि कामनाओं के बीच होकर पथिक को गुज़रना होता है, तब जाकर फल के भोगने का अवसर निकल आता है। कभी-कभी हमारी सेवायें अन्त होते-होते नये और विशेषतर सेवाओं के रूप में नया जन्म धारण कर लेती हैं। और फिर हम और पथ पर पग धरते हैं।

जिस प्राणी ने इन सब बातों को अच्छी तरह समझ लिया

है वह इष्ट सिद्धि के लिए हितचिंत से काम लेता है। इसका आँखों के सामने मन और इन्द्रियों के अन्तरी पर्दों के भीतर दिव्य दृश्य दिखाई देते हैं। सैकड़ों वर्ष, युग युगान्तर सब में वह द्रष्टा बन कर दृढ़ता पूर्वक अपने पग को जमाये रखता है। और हर हानि को अपनी अपूर्णता का परिणाम समझ कर काम करता जाता है। काम से नहीं उकताता और काम के करने ही में उसको खुशी का फल भोगने को मिल जाता है।

इस से प्रथम कि हम फल भोगने के सर्वव्यापक अटल नियम को समझें हमको जान लेना चाहिए कि हम संसार से किसी ऐसी वस्तु की आशा नहीं करते जिसका बदला हम चुका नहीं सकते। खोज कर ऐसा मार्ग तलाश करना या किसी काम को हाथ में लेना पहला काम है। दूसरा कर्म मार्ग या पंथ पर चलना है। जो हमको पंथाई का नाम प्रदान करेगा। यदि हमारे मन को दुख होता है और हमारे पग लड़खड़ाते हैं तो जान लेना चाहिए कि पंथाई बनने में जीवन के पवित्र, पुनीत और श्रेष्ठतम सम्बन्ध जोड़ने में हमारी अपनी कायरता और कुबुद्धि पथभ्रष्ट कर रही है, प्राणी जो चाहता है उसको वह वस्तु प्राप्त हो जाती है। पर हर वस्तु का मोल चुकाना पड़ता है। तपस्या करनी पड़ती है। और उस इष्ट सिद्धि के उस अमूल्य रत्न का मोल वह ही मानुषी परिश्रम, चिन्ता, सोच, व्याकुलता विषाद आदि हैं जिनको वह भूल और भ्रम से यह समझता है कि हमको अपने किये का फल नहीं मिला। मनुष्य की बुद्धि पूर्ण नहीं है, संकुचित है। वह सीमित घेरे से आगे नहीं बढ़ती, इसी कारण ऐसे शब्द वाणी से निकालती रहती है।

याद रक्खो ? रचना में 'नहीं' अथवा "असम्भव" की सम्भावना ही नहीं है। सारी कमी हम में है।

साहब के दरबार में कमी वस्तु की नाँहि।
बन्दा मौज न पावहीं चूक चाकरी माँहि॥

जिस वस्तु को हम चाहते हैं उससे अपनी आत्मा को जोड़ देते हैं। इसकी कहने की आवश्यकता नहीं कि हम क्या चाहते हैं। और यदि हम आत्मा को उस सफलता या इष्ट सिद्धि से जोड़ने का भेद जानते हैं और उसका मोल चुकाने का साहस रखते हैं तो वह मिल जायगी। इस मोल चुकाने का हाल और कोई नहीं जानता। यह केवल उसी को मालूम है जो मोल चुकाता है। क्योंकि वह उस इष्ट सिद्धि की गहराई में निरन्तर और गुप्त रूप में वास करता है।

चोट सतावे विरह की सब तन जर-जर होय।
मारन हारा जानिये, के जस लागी होय।
हिरदे भीतर दों जले, धुंआ न प्रगट होय।
जाके लागी सो लखै, या जिन लाई सोय।

कई वर्ष बीते मैंने एक जीवन को देखा जो 'ज्ञान' का विशेष रूप से अधिकारी था। ज्ञान का इच्छुक था। ज्ञान उसके जीवन का ध्येय बन गया था। सोते जागते वह इसी धुन में लगा रहता था। उसकी लालसा बुद्धि के लिये नहीं बल्कि सार ज्ञान के लिये थी, उसने रचनात्मक जीवन के सब गुप्त रहस्यों से अपने आप को जोड़ लिया। वर्षों बीत गये किसी हद तक उसने उन्नति करली। और उसको वह अनमोल मोती मिल गया। पर उसके साथ ही और भी कितनी वस्तुयें उसके हाथ आईं, जिनकी इच्छा की आदि में सम्भावना भी नहीं थी। उसको प्रतीत हुआ कि उसको इस जिज्ञासा की खोज की अवस्था में कठिन से कठिन गहराई में डुबकी लगानी पड़ी और कभी-कभी उसको मानुषी अनुभव के आधीन काल से भेंटा होने का अवसर मिला। दुख,

नियम :—

१. शिवजी महाराज जगत के सारे प्राणियों के लिये सुख और शांति के कल्याणकारी ख्यालात प्रदान करते हैं।

२. यह पत्र 'शिव' महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज दयाल के विचारों का दर्पण है।

३. "शिव" हर जाति सम्प्रदाय के बिना किसी पक्षपात सुख और शांति के विचारों को प्रगट करता है। इसमें ध्यान भक्ति प्रेम और लोक परलोक सुधार के विषय रहते

४. 'शिव' में किसी और के लेख प्रकाशित न होंगे न विज्ञा ही लिये जायेंगे।

५. 'शिव' में पुस्तकें ग्रंथ माला के रूप में प्रकाशित होती हैं।

६. नमूने का परचा बिना मूल्य न भेजा जायगा। इसकी वार्षि भेंट ६) रु० पेशगी होगा। खरीदार पूरे साल भर के बना जायेंगे। औरस्थाई ग्राहकों को सालभर में १२ पूरा पुस्त भेंट की जायेंगी।

७. 'शिव' की भाषा अति सरल सर्व साधारण की बोलचा की रहेगी।

८. पत्र व्यवहार के लिये जवाबी कार्ड आना और ग्राहक नम्ब लिखना जरूरी है।

९. पत्र हर महीने की पहली तारीख को निकलेगा।

१०. पत्र न मिलने की इत्तला एक हफ्ते के भीतर आने पर दूस प्रति भेजी जायगी। बाद को मूल्य देना होगा।

पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर हो :-

व्यवस्थापक

शिव साहित्य प्रकाशन

पो० दयाल नगर जि० अलीगढ़

उ० प्र०

कानून ख्याल

विचार शक्ति अथवा मनोविज्ञान

★

लेखक

महर्षि शिवव्रतलाल वर्मन एम. ए,

★

प्रकाशक

शिव साहित्य प्रकाशन मंडल

ट दयाल नगर जिला अलीगढ़ उ० प्र०

सर्वाधिकार स्वरक्षित

मूल्य १)

—:o:—

विषय

१. प्रस्तावना व निवेदन ....

२. भूमिका ....

३. कर्मभोग ....

४. विद्या का भूत ....

५. विद्या और उसका उद्देश ....

६. सादा जीवन की महिमा ....

७. जीवन का राग ....

८. सफलता की कुंजी ....

९. सार ज्ञान या अनुभव ....

१०. विचार और उसकी शक्ति ....

११. कर सकना और न कर सकना....

१२. अपनी निज सम्मति या अनुभव का

१३. राग द्वेष ....

१४. परीक्षा और कष्ट ....

प्रस्तावना

ात्माओं का आदर सन्मान संसार में सदैव से
। इनकी मान प्रतिष्ठा बराबर होती रहेगी।
इन्हीं परम पुनीत और पूज्य महात्माओं के
ार स्वर्ग धाम बना हुआ है। नहीं तो
एड से भी कहीं बुरी होती। दीन दुखी जीवों
ो सुख शांति और परम आनन्द मिलता है
कलिमल नाश हो जाते हैं। फिर भी हम में
भी हैं जो इनको निकम्मा और जाति
। संसारी विद्या पढ़े लिखे लोगों के ऐसे
न में है यह असत्य। संत महात्मा आलसी,
नहीं होते। हां ढोंगी वेश धारियों के
। हम उनको साधु और संतों

[पाँच]

हत्य प्रकाशन में शिवजी के ज्ञान के भंडार
ी पुस्तकें निकलेंगी जो जिज्ञासुओं को प्रेम
ुख शांति प्रदान करेंगी।

लेखने पर मैं इस साल दयाल धाम अवश्य
ेरे निज़ामाबाद के जन्म दिवस मनाने
ो, मुझे अब सिकंद्राबाद जाकर शिव
सत्संगी भी बहुत लालायत हैं। मैं
। 'शिव' साहित्य मंडल के सदस्य

❋ शिवरात्रि अंक ❋

१ मार्च सन् १९५५] दयालनगर (अलीगढ़) [तरंग (१)

प्रार्थना

घट का घर सूना पड़ा है इसमें आप आजाइये।
दास हूँ सेवक हूँ सच्चा अब तो आप अपनाइये।
काम का मद मोह का माया का कूड़ा हट गया
शुद्ध निर्मल और सुथरी कोठरी में आइये।
घट का घर मंदिर बने सुन्दर सुहाना अद्भुति
मूर्ति आकर आजे अपनी छवि दिखलाइये।
मैं तुम्हारा तुम हो मेरे यह समझ में आगया
भ्रम और अज्ञान माया मोह का मिटवाइये।
आरती साजूं जलाऊं ज्योति भक्ति प्रेम की
राधास्वामी नाद घंटा शंख में सुनवाइये।

भूमिका

विचारों का फैलाना ही वास्तव में उन्नति का श्रेष्ठ साधन है। जो व्यक्ति किसी जाति की उन्नति के अभिलाषी हों उनको चाहिये कि उसके विचारों को विस्तरित करदें। जहाँ उन्नति के विचार मन में दृढ़ होने लगे, वह स्वयं सहज और सरल रीति में उन्नति के शिखरपर चढ़ जायगी। और साधन सम्पन्न बनती दिखाई देगी।

इस पुस्तक में जो लेख संक्षेप में आये हैं, उन सब का सम्बंध 'विचार शक्ति' अथवा दृढ़ प्रतम्य होकर विचार में लग जाना है। आशा है जो इसको बार बार विचार करेंगे, उनको हर बार नवीन रहस्य अनुभव में आवेंगे, जिससे वह अपने लोक और परलोक को सहज रीति से सुधारने में सफल होंगे।

"शिव"

दाता दयाल

महऋषि शिवव्रतलाल वर्मन एम० ए०

ने ही उसके सामने फसल काट कर रख दी। याद रक्खो संसार में तुम्हारे मन, कर्म, वचन और भावों की हर समय रजिस्ट्री होती रहती है और जिस यंत्र से तुम औरों के लिये नापते हो उसी से तुम्हारे लिये मापा जायगा। मान प्रतिष्ठा के चाहने वालो! सदाव्रत के जारी करने वालो! इसको अच्छी तरह चित में बसालो! नाम की इच्छा से दान देने वालो! इससे शिक्षा लो! बाहरी आँखों से देखने में चाहे धोखा खा जाँय पर वह जो सर्व व्यापक है। हमारे तुम्हारे सबके नस नाड़ियों में बसा हुआ है। उसको हर बात की खबर है। उसकी आँखों में तुम धूल नहीं डाल सकते।

परन्तु अब सवाल यह है कि "क्या व प्रेम व प्यार की सेवा के वर्ष कोरे व्यर्थ ही गये।' नहीं उनकी भी रजिस्ट्री ब्रह्मांडी मन के दफ्तर में होती रही और उसके भंडार से किसी अन्य स्थान पर इसका बदला मिला। कुछ वर्ष पश्चात् एक अनजान पुरुष ने उसके प्रेम का बदला चुकाया अपनी शिक्षा दीक्षा और सच्ची भक्ति का उदाहरण दिखाकर उसको शाँति, प्रेम और द्रव्य का बदला चुका दिया। इसको पूरा बदला मिल गया। और उसका जीवन दिखावे से घृणा करके फिर सावधानी से व्यतीत हुआ।

बदला या फल हमारे हाथ की पहुँच के निकट है केवल समझने और जानने की देर है। मनुष्य अपनी उदासीनता 'वैराग' के स्वभाव से इसको छोटा, तुच्छ सीमाबद्ध बनाते रहते हैं। और अधिक अपनी सेवा का फल माँगने के इच्छुक रहते हैं। हममें से अधिकांश उन बालकों के समान हैं जो रबड़ की गेंद को फूंक से फुलाकर ऊपर की ओर उसको उछालते हैं और वह उसी तागे के सहारे उनकी ओर आजाती है। इस तरह कर्मों के फल कम होते हैं। प्रकृति के सर्व व्यापक नियम में कर्म के फल देने के धागे भिन्न हुआ करते हैं। जिसको तुम नष्ट हुआ समझते हो वह

किसी और रूप में तुम्हारे पास पहुँचेगा। कहावत है:—जो जीवन को खो देता है जीवन उसको मिलता है।" यह सचाई उन लोगों के लिए है जिनमें इसके समझने का संस्कार है। और हम थोड़ा संतोष करते हुये इस जीवन को पहले की अपेक्षा अधिक पूर्ण और ऊपर के लोकों में पहुँचने के योग्य बना लेते हैं। और वह हमारा अपना बन जाता है।

जो तू प्यासा प्रेम का, शीश काट कर गोय[1]।
जब तू ऐसा करेगा, तब कुछ होय तो होय।
हंस-हंस कन्थ न पाईया, जिन पाया तिन रोय।
हँसत खेलत जो पिउ मिलें, तो कौन दुहागिन होय।
सिर राखे सिर जात है सिर काटे सर[2] होय।
जैसे बाती दीप की, कट उजियारी होय।

संसार में कर्म का फल हर समय और सदा मिला करता है। हम जो माँगते हैं हमको दिया जाता है। और जो भूल से हानि की शिकायत करते रहते हैं वह केवल मनुष्य की दृष्टि से इस को देखते हैं। इन लोगों ने समय या काल को एक परिमित चक्र मान रक्खा है।

कर्मफल एक दिन, एक घंटा या एक जन्म की वस्तु नहीं है। एक पल की सेवा से क्या आशा रखते हो? बल और प्रेम जन्ममर अभ्यास करने से आते हैं.....हम केवल इस कारण कर्मफल न पाने का दुख रोते हैं क्योंकि हमने कर्मफल भोगने के सर्वव्यापक नियम की उदारता को भले प्रकार नहीं समझा। जिन प्राणियों को तुम कर्म के फल न मिलने से वंचित समझते हो वह वास्तव में ऐसे नहीं हैं। इस रचना पद्धति में कहीं भी ऐसी त्रुटि नहीं है। उसका मिथ्या अर्थ न लगाओ। यह

१. कह २. विजय।

तुम्हारी अपनी भूल और भ्रम का कारण है। हम जो बोते हैं। किसी समय अवश्य काटेंगे। और ठीक समय से पहले या पीछे कभी भी हम फसल को नहीं काट सकते।

जो जीवन सेवा भाव में व्यतीत होता है सेवा का फल भोगता है। जो प्रेम में बिताता है वह प्रेम का भागी होता है। जो कमजोरी बोते हैं वह कमजोरी ही काटते हैं देखो! देखो खेतों को तो जरा। जैसा बोया था उसको वैसा मिला।

यह है तिल, यह है गेहूँ, यह है मूंग, यह है राई, यह है जव, यह है खशखाश। यह सचाई है, इससे किसी को छुटकारा नहीं है। सोचो समझो। तुम्हारे कर्म तुम्हारे पास लौट कर आवेंगे। क्योंकि क्षोभ (हिलोर) सदा गोलाकार हुआ करती हैं। सम्भव है वह एक अनोखे ढंग में हों।

कर्म फल के भोग का नियम हमारे जीवन भर काम करता रहता है। जिस तरह नदी का बहाव सदा चलता रहता है ठीक वैसे ही इसकी भी धार जारी रहती है। पर हमको अपनी बुद्धि को इतनी सूक्ष्म और तीव्र बना लेनी चाहिये कि हम इनको पहि-चान सकें कि यह हमारे ही हैं। हम हर जगह जीवन के हर अंग में इनसे मिला करते हैं। पर हानि और अहंकार के गर्म आंसुओं से हमारी आँखें अंधी बनी रहती हैं। हम उनको देख नहीं सकते हम अपनी कामना के बीज, मोल का ध्यान किये ही बिना बोते हैं। और परिणाम यह होता है कि दुख के पीले फूल हमारे चारों ओर फूलने लगते हैं। हमको आशा सफेद फूलों की रहती है। और जहाँ हमने उनकी सूरत देखी आश्चर्य से मुख फेरने लगते हैं। हम नहीं जानते थे कि यह दुख और कष्ट इस सम्बन्ध का आवश्यक परिणाम है। हमको सोच लेना चाहिये "हर वस्तु

अपने जिन्स ही को पैदा करती है।" और जब हम राह पर चलते हैं यह ही नियम हमारे जीवन में अंग संग रहता है।

कुछ प्राणी कहते हैं हमको विद्या और धन दोनों नहीं मिल सकते। इस कारण हमने धन का विचार छोड़ दिया और विद्या के पीछे हो लिये। दूसरे कहते हैं कि एक ही नौकर दो स्वामियों की सेवा के जीवन को सर्वोपर माने। कितने अफसोस की बात है! वह विद्या ही क्या चीज है जो अपने क्रम में धन को नहीं खींच लाती। या आत्मा की अन्य इच्छाओं की सामग्री को नहीं पैदा करती। और वह सेवा ही क्या हुई जो इस बात के समझने में रुकावट डालती है कि सेवा करने से ही खुशी मिलती है।

जीवन ने जो कुछ बोया है वही दूसरे रूप में बदल कर वापिस आता है। और जब हम उसको समझ लेते हैं तब हम अपने आप को उससे नाता जोड़ने को तय्यार हो जाते हैं जो सर्व प्रकार से परिपूर्ण हैं। और उस पूर्ण की ही आशा करते हैं उस समय निसंकोच हमको लेष मात्र भी चिन्ता नहीं रहती कि हमको कैसा फल मिल रहा है।

फल की चिंता करना व्यर्थ है। कर्म पौधे के तरह पत्ते व डाली निकाल कर तब फल देता है। वृक्ष में एकदम ही फल नहीं आते। पहले अपने अंदर सोचो और समझो कि हमको किस वस्तु की इच्छा है। और यह भी विश्वास करलो कि हमको पूरी सामर्थ्य के साथ उसकी कामना करनी है फिर काम में लग जाओ। और यह भी चिंतन किया करो कि उसका मोल क्या है? इसके उपरान्त विचारो कि इस के सिलसिले में कौन से दृश्य कौन से हालात से हमको भेटा होगा। तब "मार्ग" पर चलते हुये मन और चित्त को सूक्ष्म बनाते हुये हम आगे को

बढ़ते जायेंगे और कोई शक्ति हमारे दृढ़ व्रत को रोक न सकेगी और हमको ठीक-ठीक फल मिल जायगा।

जब हम उस परिपूर्ण और सर्व सम्पन्न से मिलने जाँय हमको अपने आपको सीमित न रखना चाहिये। सर्व शक्तिमान पूर्ण की इच्छा करो। सर्व शक्तिमान पूर्ण से विनय करो। और सर्व शक्तिमान पूर्ण की उपासना (पास बैठे) करो और जब हम ऐसा कर लेंगे शिकायत (दुख दर्द) का मुख आप बंद हो जायगा फल इच्छानुसार मिल जायगा। माँगने से प्रथम ही मोल चुक जायगा। और हम उस सर्वव्यापक तत्व से मिल कर एक हो जायेंगे जो सब की जान और प्राण है और आकर न केवल फल की ही इच्छा न रहेगी बल्कि हम "मार्ग" के अर्थ को सिद्ध कर लेंगे और उससे मिलकर एक हो जायेंगे जिसने हमको यहाँ भेजा था। और उस समय किरण सूर्य में और बुंद सिंध में समा जायगी।

फल न मिलने का इसमें अवसर कहाँ हैं? जो सत है चित है और आनन्द है वहां आनन्द की लहरें उठती हैं। संसार का रोना सदैव के लिये मिट जायगा। इस पूर्ण महा चैतन्य की उपासना (उप=पास। आसन=बैठना) से वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होगी। उसमें जो सार तत्व है। सार जीवन है मिल जायगा

तुम्हारी प्रार्थना का आदि उस समय हुआ था जब तुमने प्रथम ही प्रार्थना की थी। अब यह उसका अन्त है। इस हितोपदेश के सुन लेने और समझलेने से तुम्हारा भला होगा। हाँ भला होगा।

और सुरत विसरी सकल लौ लागी रहे संग।
आओ जाओ कासे कहूँ मन राता[1] गुरु रंग।

---

१. रम गया।

जब लग कथनी हम कथी दूर रहा जगदीश।
कहना सुनना सब गया लौ लागी अब ईश।

२—विद्या का भूत

बिना विचारे जो करे सो पाछे पछिताय।
काम बिगाड़े आपनों जग में होत हंसाय।
(गिरधर कविराय)

किशोर अवस्था की शादी के विपरीत बहुत काल से चिल्ला रहे हैं। और बात भी सच्ची है। पर इससे अधिक हानि अपनी जाति और देश की वह पुरुष कर रहे हैं जो बिना समझे बूझे अपने लड़कों को शिक्षा के 'भूत' के नाम पर बलिदान कर रहे हैं।

विद्या आवश्यक वस्तु है। शिक्षा से अधिक लाभप्रद और कोई बात नहीं है। शिक्षा के लाभों से कदाचित किसी नादान ही को इन्कार होगा। यह सच है। इसके सच होने में कोई भी संदेह नहीं है। मनुष्य की सारी उन्नतियों का आधार विद्या पर ही है। विद्या पाकर प्राचीन पुरुषों के अनुभव से लाभ उठाकर वह इस में बराबर उन्नति करता रहता है। वह पशुओं के समान बंधेलूआ नहीं बनाया गया। वह पशुवत् बुद्धि की सीमा के घेरे से ऊपर जाने का इच्छुक है। यही नहीं बल्कि बुद्धि के भावों को उन्नतिशील बना कर किसी समय वह देश काल और वस्तु के बन्धन को भी तोड़ देने का अभिमानी होजाता है। और जो लोग इस आत्मिक इष्ट का ध्यान रखते हैं जो वेदांत का उद्देश है वह सहज ही समझ सकते हैं कि मनुष्य क्या कुछ नहीं है। और क्या कुछ होना नहीं चाहता। इन सब भावों की पूर्ति। इन सब कामनाओं की उन्नति और उसके सब उच्च भावों का प्रगट करना। विद्या के ही आधार

पर है। हर व्यक्ति को शिक्षा देना अति आवश्यक है। शिक्षा पाना हमारा अधिकार है। इस से किसी को इन्कार नहीं और कोई नादान व्यक्ति ही इस लाभ दायक आवश्यक और सर्वोत्तम प्रणाली का विरोध या बुराई करने का साहस करेगा। तालीम दो, सबको पढ़ाओ लिखाओ, परिश्रम करो। तुम में से एक भी पुरुष हो या स्त्री बेपढ़ा न रहे। पर शिक्षा समझ बूझ कर दो। विवेक विचार से काम लो। अविवेक या बे सोचे समझे का काम लाभदायक होने के बदले हानि कारक होता है।

तुम उस मनुष्य को कदाचित समझदार न कहोगे जो एक मकान की बुनियाद पर चार मंजिल मकान बना रहा है। क्या यह मकान कभी मकान की कोटि में रह सकता है? प्रथम तो इसका बनना ही कठिन है। कमजोर बुनियाद वाली इमारत कारीगरों के लिये, मालिक मकान के लिये, राह से जाने वालों के लिये और पड़ोसियों के लिये खतरनाक है। थोड़ा सा तूफान आया, किसी दिन मूसलाधार बारिश शुरू होगई या और किसी कारण दीवारों में कमजोरी आगई। सारा मकान दम के दम में अड़अड़ धम नीचे आगिरा। कितने मनुष्यों की हड्डी पसली चूर-चूर हो गई। कितने इसके नीचे पड़कर दब गये कितनों को कष्ट होगया। यह हाल सम्भव है उसके बनने से प्रथम ही होजाय पर मानलो कि वह बन भी जाय तो क्या वह पाईदार हो सकता है? यह इमारत कभी पाइदार नहीं हो सकती, इसकी मज़बूती की आशा रखना भूल है। ऐसा विचार करना बुद्धिमानी नहीं है।

तुम उस व्यक्ति को विवेकी न कहोगे जो जल्दी फूल और फल आने की आशा से पौधे की देखरेख की ओर से उदासीन बन जाता है। इसमें संदेह नहीं कि इसमें फल और फूल तो

आजायेंगे पर क्या इस उतावलेपन और इस नादानी के कारण पौधों के नष्ट होने की सम्भावना न उत्पन्न हो जायगी।

किंचित आप विचार करें हमारी जाति के किशोर आयु के बालकों के कंधों पर किस बेदर्दी और नासमझी के साथ शिक्षा का भार रक्खा जारहा है। जाति की नीच जातियों में तो शिक्षा के नाम शून्य है, इस ओर किसी का भी ध्यान नहीं जाता। शहरों को छोड़ दीजिये। देहात में जाकर देखिये। मूढ़पन और अविद्या ने कैसे हाथ पांव फैला रक्खे हैं कि हजारों में कठिनाई से एक दो ऐसे निकलेंगे जिनको केवल अक्षर पहचानने तक का बोध होगा। पर धन्य है! दो-चार सभ्य जाति हैं जिनको शिक्षक जाति का नाम प्रदान किया गया है। थोड़ा उनकी दशा पर ही विचार कीजिये। जितने हैं सबको शिक्षा की धुन है। और सब किशोर अवस्था में चाहते हैं कि आगे की बड़ी आयु के चरित्र दिखायें। हम जिस समय में हेडमास्टर थे शिक्षा विभाग ने मंजूर करके जो भार आठ वर्ष के बच्चों पर रक्खा था देख कर घबरा उठते थे। सात आठ वर्ष की आयु और उनकी गरदन पर इतना भार! चाहे भयवश माता पिता के आदेश और ऊँचे दर्जों में उन्नति करने के लोभ से वह रात दिन महनत करके लिखने पढ़ने में कुछ उन्नति करलें पर एक साधारण बुद्धि का पुरुष समझ सकता है कि इस कठिन परिश्रम का परिणाम उनकी आगामी प्राकृतिक जीवन उन्नति में बाधक होगा कि नहीं? माना यह सब के सब जीवित रह कर कुछ काम धन्दा भी कर सकेंगे। पर प्रथम तो उनके कामों में दृढ़ता कम होगी दूसरे इन में से फीसदी दो भी कठिनाई से सौ वर्ष की आयु जो मनुष्य की प्राकृतिक आयु है, प्राप्त कर सकेंगे, कुल नष्ट हुये जारहे हैं। घरों में जाति के नष्ट होने के

आसार प्रगट हो रहे हैं। पर शिक्षा का भूत सब के सिरों पर बुरी तरह से सवार है। यह केवल हमारे ही देश का हाल नहीं है, यूरुप और अमेरिका सब को इस भयानक भूत ने पछाड़ रक्खा है। डारविन ने "योग्यता और जीवन के क़ाइम रखने के परिणाम" की शिक्षा दी कि सारी दुनिया उसी ओर दौड़ पड़ी। और आज के सभ्य देश हमारे देश की अपेक्षा अधिक इस भूत के शिकार हो रहे हैं। पहले के अनुपात से मनुष्यों के पैदा होने के कागजात को देखो। खुद ही पता लगजायगा। इस घुड़ दौड़ का क्या परिणाम है। नासमझी, भूल-चूक, विना विचारे करना, अपना प्रभाव डाले विना नहीं रह सकते। वहाँ सबको भले प्रकार समझाया गया है। वह समझ भी गये हैं कि रोटी कमाने को विद्या-बुद्धि और कलाकौशल की नितांत आवश्यकता है। पश्चिमी सभ्यता का आदर्श ही यह है कि संसारी सुख चैन के सामान जुटाये जांव। और सब को इसी की धुन है। और उनकी देखा-देखी हम भी उसी लहर में बहे चले जा रहे हैं।

हमारे देश में प्राचीन समय में जो शिक्षा दी जाती थी वह अपनी सभ्यता की दृष्टि से अति लाभप्रद और पूर्ण थी। इसमें समयानुकूल कुछ परिवर्तन आवश्य करना चाहिये था। पर नितांत उनकी नक़ल करना और उसी रौ में बहे जाना किसी अवस्था में उचित नहीं।

हमारे यहाँ शिक्षा का प्रबन्ध यह था कि सात आठ वर्ष की आयु में बालकों को माता पिता अपने से अलग कर देते थे। उस समय भी माता पिता बराबर देखा करते थे कि उनकी सन्तान की रुचि और स्वभाव किस ओर है? और फिर वह घर से अलग होकर शिक्षा पाने गुरु के पास जाते थे वहाँ भी उनके सहज और प्राकृतिक स्वभाव का आदर किया जाता था।

उनके स्वभाव के विरुद्ध शिक्षा नहीं देते थे। इनको इस कदर अवकाश होता था कि वह शारीरिक स्वास्थ्य के विज्ञान से अनभिज्ञ नहीं रहते थे और साथ ही सभ्यता और शिष्टाचार के आचर्णों को भी ध्यान में रखते थे। और शिक्षा भी उनको इस भाँति की दी जाती थी कि आगे के जीवन में काम आवे। प्रथम शिक्षा में सब शामिल रहते थे। पर इससे आगे की शिक्षा में परिवर्तन कर दिया जाता था। यह नहीं कि किसी को यदि गणित से रुचि न हो तो भी उस पर उसका भार थोपा जाय। इसका परिणाम यह होता था कि शिक्षा समाप्त करके जब वह गुरुकुलों से निकलते थे अपनी-अपनी रुचि के अनुसार पढ़ी हुई विद्या में प्रवीण होते थे। आधा तीतर आधे बटेर के समान नहीं होते थे। आजकल इसके ठीक विपरीत है।

प्राचीन प्रणाली पूर्ण थी या अपूर्ण इस पर बहस नहीं है। संसार का कोई कार्य पूर्ण होता ही नहीं। इसलिये कोई कैसे इसको पूर्ण कह सकता है? समयानुकूल, आवश्यकतानुसार, सहज और स्वाभाविक रीति में हर वस्तु का बदलते रहना बुद्धिमानों का आदर्श होना चाहिये। और इसी कारण हमने पहले कहा है कि इसमें परिवर्तन की आवश्यकता है। हमारे लिए वह शिक्षा लाभप्रद हो सकती थी जो पूर्व और पश्चिम की शिक्षा की मिलानी होती। और उसके जारी करने में हमको युवकों की आयु, उनके स्वभाव, उनकी शारीरिक व अंतःकर्ण और रोजी के साधनों आदि के विषयों को दृष्टि में रखना चाहिये था। पर यह कभी नहीं हुआ। और परिणाम यह होरहा है कि हम ईसा पैदा कर रहे हैं न कौए। और वह बेचारे समय से पहले ही दुनियाँ से कूँच करते जा रहे हैं। और उनका खून हमारी गर्दन पर पड़ता है। शिक्षा जो आजकल दी जा रही है कहाँ तक संशोधन

के योग्य है करीब करीब हर साहब औलाद के ध्यान देने योग्य है।

हमारी आज की शिक्षा में जो कमी हैं हमने लगभग ऊपर सब निवेदन कर दिया। फिर यहां दुबारा लिखते हैं कि अधिक विचाराधीन हो सकें।

(१) बच्चों की आयु का ध्यान नहीं रक्खा जाता।

(२) उनकी स्वभाविक रुचि और योग्यता पर दृष्टि नहीं रक्खी जाती।

(३) पुस्तकों का भार जरूरत से अधिक रहता है।

(४) सबको एक प्रकार की शिक्षा दी जाती है।

(५) उद्देश यह रहता है कि सब विद्या के धंधों में दाखिल हों।

(६) विषय इस कसरत से होते हैं कि छोटी आयु के बच्चों के दिमाग़ की दुरुस्ती के बदले उल्टी हानि होती है। सोचने समझने के बदले वह केवल पुस्तक को कंठाग्रह करने की कोशिश में रहते हैं।

(७) अक्सर हमारे बच्चों को तीन-चार भाषायें व तीन-चार प्रकार के हुरुफ एक साथ सीखने पड़ते हैं। जैसे युक्त प्रांत में यह नियम है कि हर विद्यार्थी को चाहे वह छोटे दर्जे का क्यों न हो अंग्रेजी, फारसी या संस्कृत। हिन्दी या उर्दू जरूरी सीखनी पड़ती है। आदि आदि।

इस शिक्षा का ही परिणाम है कि बहुधा हमारे होनहार और और आशा दिलाने वाले युवक समय से पहले हम से अलग हो जाते हैं और यदि जीवित भी रहे तो बीमारी व कमजोरी के पंजे में सारे जीवन पर्यन्त दुखी रहते हैं। इस शिक्षा का प्रभाव कुछ ऐसा होगया कि सब लोग अधिकतर नौकरियों की ओर दौड़ते हैं। और परिश्रम के काम-धन्धों से जी चुराते हैं। ऐसा

होना उचित नहीं मनुष्य को विद्या हासिल करके शारीरिक महनत व परिश्रम के कामों में भी लगना चाहिये। कौंट टोल्स्टाई रूसी विद्वान की सम्मति है कि विश्व की शिक्षा प्रणाली का नियम एक गलत राह की ओर जारहा है जो शिक्षा हम से हमारी सादगी को छीन लेती है वह हानिकारक होती है। अपनी रोटी खुद अपने परिश्रम से कमाना हमारा कर्तव्य होना चाहिये। हाथ के कामों से घृणा करना कभी किसी हालत में ठीक नहीं है। जो लोग इस तरह पर रोटी कमाते हैं वे ही वास्तव में अधिकांश संसार की उच्च सेवा कर रहे हैं। सौ में से केवल चालीस किसान खेतिहरों पर ही हम सबकी रोटी का भार है।

यूरप के कुछ-कुछ हकूमत करने वालों का नियम है कि "स्वरक्षा" के लिये काम करना प्रकृति का प्रथम सिद्धांत है और 'स्थाई चेष्टा' अथवा 'सदा सचेत' रहना ही स्वतंत्रता का सर्व श्रेष्ट इनाम है। और इससे अधिक सच्ची बात और क्या हो सकती है। कि 'असली सचेत' रहना और 'असली निज उपकार' का काम हमारा शिक्षक समाज नहीं बल्कि किसान लोग करते हैं। इसका यह सारांश कदापि नहीं है कि हमारा शिक्षक वर्ग, प्रोफेसर डाक्टर इत्यादि निकम्मे हैं। इनको चाहिये था कि यह शरीर में मस्तिक के समान थोड़ी सी जगह लेकर अपने प्रभाव को फैलाते। हाथ को, टांगों को, घुटनों को, इनसे बल मिलता। पर खेद है! और साथ ही क्षमा के योग्य हैं कि इस अभागे देश के लिये सबसे अधिक निकृष्ट इनकी स्थिति अब तक साबित हो रही है। इनमें असलीयत नहीं। इनमें उसका आदर नहीं यह समाज में (मस्तिष्क) का काम नहीं कर रहे हैं। इनको नकल करने के बुरे भूत ने इस तरह दबोच रक्खा है कि सार को न समझ कर वह भाँडों की तरह नकल करने की धुन में बुरी तरह

से बहे जारहे हैं। इनको समाज में अपनी प्रतिष्ठा और मान का ज्ञान नहीं है। इनमें यह सामर्थ्य नहीं कि जब चाहे सबको अपना बल देकर एक दम अपने प्रभाव में ले आवें। देखो जब मस्तिष्क किसी विशेष ख्याल या विचार के प्रभाव में आजाता है। क्या हालत होती है? सारा शरीर उसके प्रभाव के आधीन हो जाता है। आप थोड़ा देर के लिये विचारें क्या यह शिक्षित समाज हम में मस्तिष्क का काम दे रहा है तो किस अंश तक।

ब्राह्मण मस्तिष्क है, क्षत्री भुजा हैं, वैश्य पेट, और शरीर का बीच का हिस्सा है। शूद्र पाँव हैं। यह अलंकार है। इसको ऐसे समझो। शिक्षित समाज जो सार तत्व को समझ कर केवल सद विचारों से किसी वर्ग को अपने प्रभाव में लाकर जीवित रक्खे मस्तिष्क है। इसका स्थान शरीर में छोटा है। वह वास्तव में निज उपकार अथवा परोपकार के नियम का अधिकारी है। यदि वह अपनी शिक्षा से यह जरूरी और लाभदायक पाठ नहीं पढ़ा सकता तो उसको काट कर फेंक दो। क्योंकि वह भ्रष्ट होगया है। शरीर इसके बिना मरा पड़ा रहे, यह अच्छा है पर जो अंग निकम्मा और निकृष्ट होगया है व्यर्थ है। उसका न रहना ही भला है। क्षत्री दोनों हाथ हैं जो जाति की रक्षा में परिश्रम करते हैं। मस्तिष्क से जो लहरें आती हैं वह 'वाणी' हैं। वाणी ब्राह्मण है। पर इस वाणी को ग्रहण करने वाले क्षत्री हैं। जो वास्तव में निज उपकार के लिये पूर्ण रूप में यत्न करते हैं। इनका प्रभाव इतना नहीं पर इनकी पहुँच सब तक रहती है। कौन सी इन्द्री है जो हाथ की पहुँच में या आधीन नहीं। आँख किसी बुरे और अच्छा न लगने वाली वस्तु को देखना नहीं चाहती पर उसको दूर नहीं कर सकती। हाथ ही सहायता करता है। नाक बास या सुबास को पसंद नहीं करती पर विवश है, हटा नहीं

सकती। इसको सूंघना ही पड़ता है। हाथ यहाँ दो प्रकार की सेवा करता है। या तो उसको दूर हटा देता है या उंगलियों से नथनों को बंद कर देता है जो सूंघता न पड़े। जिह्वा स्वाद लेना चाहती है पर हाथ के वशीभूत है। इत्यादि इत्यादि। शास्त्र कहते हैं "क्षात्रधर्म पर्मोधर्मः" और देखो तुम्हारे शरीर में दोनों भुजा क्या क्या करामात नहीं करतीं। यह भी शिक्षा व सुधार के आधीन हैं। शिक्षा दो ताकि यह अपनी सेवा कर सकें। यदि यह हाथ काम नहीं देते तो काट कर फेंक दो। शरीर का टोंटा रहना अच्छा है। बे काम का अंग शरीर को अपवित्र कर देता है। हाथ के नीचे वैश्य का स्थान है। औरों की अपेक्षा से उसने अधिक स्थान ले रक्खा है। वह भंडार है जिस से सब को खाना बटता है। पालन, पोषण, खेती, बाड़ी, नाज पानी, मवेशियों की चराई, तिजारत इत्यादि सब इसके धर्म हैं, जिस से सब की रक्षा होती रहे। यह निज उपकार की सामग्री का पैदा करने वाला, रक्षा करने वाला, और सब को यथायोग्य बाँट करने वाला है। सबका आधार यह है। सब की चोटी इसके हाथ में है। इसको ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए। यदि वह काम ठीक-ठीक नहीं देता तो पेट को चाक कर दो। ऐसे शरीर का मरना भला है। जिसका पेट खराब है, जठराग्नि खाना नहीं पचा सकती और न खून इत्यादि पैदा कर के नस नाड़ियों में बाँट सकती है, ऐसे पेट का चाक होना ही अच्छा है। शरीर मर जाय, धूल मिट्टी व खून में सना रहे पर ससक ससक कर मरना अच्छा नहीं लगता। खराब पेट सब शरीर को बे काम का बनाये रक्खेगा। पेट के नीचे शूद्र की जगह है। जो इस शरीर की टाँगें हैं। उन्होंने सब से अधिक स्थान ले रक्खा है। यह सब शरीर के ऊपर के

अंगों के आधार हैं। यह न हों तो फिर कैसा चलना फिरना और कैसा काम। इनको शक्ति और बल पाने की शिक्षा मिलनी चाहिए। यदि यह अपना कर्तव्य पालन नहीं कर सकते तो इन को काट कर फेंक दो। रोगी अंग सब शरीर को रोगी बनाये रक्खेगा और वह अपवित्र बन जायगा।

जो मान आदर इस शरीर में हमारे अनेक अंगों का है वह ही समाज के अनेक दर्जों का है। और हर दर्जे के मनुष्यों के भिन्न-भिन्न धर्म हैं। इन कर्मों की समझ कुदर्ती या स्वभाविक ढंग से सब में मौजूद है। पर शिक्षा से इनकी उन्नति होती है। यदि किसी पुरुष का मस्तिष्क अच्छा है तो वह और अंगों को खुद अच्छा बना लेगा। पर जो खुद ही रोगी है उसका भगवान ही रक्षक है।

शिक्षित वर्ग का मान प्राकृतिक ढंग से ब्राह्मण का है। वह जाति के अगुआ, लीडर, सब के पथ प्रदर्शक, सबको अपने विचार देने वाले, सबको एक विशेष पथ पर चलाने वाले हैं। यदि किसी कारण वे बल हीन या रोगी हैं तो फिर ईश्वर ही बेली है।

मरीजे इश्क पर रहमत खुदा की।
मर्ज बढ़ता गया जूं जूं दवा की।

विपरीत भावनायें जब अपना प्रभाव डालना चाहती हैं सबसे प्रथम मित्र या शत्रु के मस्तिष्क ही को प्रभावित करती हैं। शेष सब खुदबखुद ठंडे हो जाते हैं। किसी संघ के सरदार को बंदी बनालो शेष सब भेड़ बकरी के सामान आधीन हो जायेंगे। यह शिक्षित वर्ग का गुण कर्म और स्वभाव होना चाहिये।

अब प्रश्न यह है कि शिक्षित समाज हम में वास्तव में अपना

धर्म निबाह रहा है ? उत्तर कदाचित हाँ में न होगा। इसका कारण क्या है ?

शिक्षा में दोष। हमारे कालिजों से कितने ग्रेजुएट निकला करते हैं। कितने मनुष्यों को शिक्षा मिलती है। कितने शिक्षित कहलाते हैं। पर इनमें बहुत कम तादाद ऐसी होती है जिनमें (Common Sense), स्वभाविक, प्राकृतिक बुद्धि होने का अनुमान होता है। साधारण रूप में कहा जाता है विद्या शक्ति है। इससे शेर, फाड़ खाने वाले पशु, हाथी, जल, वायु, सब पर अधिकार किया जा सकता है। पर देखिये इस विद्या और इस शक्ति का हम में क्या हाल है ? इनमें तो इतनी भी सामर्थ्य नहीं कि समाज के नियम को ठीक रख सकें। यदि किसी ने कुछ करने धरने का साहस भी किया तो कोरी नकल उतारना। यह नहीं समझा कि इस खेत में कैसे बीज डालने चाहियें ? परिणाम क्या होता है ? वह ही ढाक के तीन पात !

३—विद्या और उसका उद्देश

आप आप को आप पहंचानों।
कहा और का नेक न मानों॥ (रा० स्वा० महाराज)

मानुषी जीवन में पग-पग पर हमको नये दृश्य और नए विचारों की जानकारी प्राप्त करने का अवकाश रहता है, पर इसके साथ-साथ हमको मिथ्या ज्ञान भी हुआ करता है। कभी सच्चा ज्ञान हमको सत्य के ध्येय की ओर बढ़ाता जाता है। मिथ्या ज्ञान हमको किसी और तरफ लिये जारहा है, ताकि हम ठोकर खांय और दुख भोगें। सच्चे ज्ञान से हमारा चित्त उदार, मस्तिष्क गम्भीर और दिव्य दृष्टि बन जाते हैं। मिथ्या ज्ञान के

कारण हम कठोर हृदय, तंग ख्याल, पक्षपाती बन कर पशुओं के समान और कामी बन जाते हैं। सच्चा ज्ञान हमको ऊपर लेजाता है। झूंठा नीचे गिराता है।

सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के साधन सत्संग, स्वाध्याय, और अपना निजी विवेक विचार है। मिथ्या ज्ञान के बन्धन में हम उस समय फंसते हैं जब देखा देखी नक़ल करते हैं और सार को न समझते हुये झूंठे भ्रम में फंसते जाते हैं और अपने मानुषी उत्तर दायत्व व आत्मिक सम्बंध को न विचार कर उन मनुष्यों की बातों पर विश्वास कर लेते हैं जिनको हम ज्ञानी समझते हैं।

सुना सुनी की है नहिं देखा देखी की बात।
दूल्हा दुलहिन मिल रहे फीकी पड़ी बरात।

स्वामी शंकाचार्य जो वेदान्त के सर्व श्रेष्ट ज्ञानी हैं। वह ज्ञान के तीन साधन बताते हैं। वेद, गुरु और मन। मन वेद सत्य हैं गुरु सत्य हैं। पर मन का संकल्प विकल्प का स्वभाव है। सम्भव है यह मिथ्या पथ की ओर ले जाय और सम्भव है यह सत्य मार्ग दिखाये। इस कारण वह विशाल और उदार हृदय वाले महात्मा लिखते हैं "जिन विषयों में इन तीनों का सम्बंध हो उसको सत्य जानो" वेद ईश्वरी ज्ञान, प्रकृति के अटल नियम और ब्रह्मांड के अपार ज्ञान का नाम है, यह ऐसा निर्पक्ष नियम है जो हर देश, काल और वस्तु में ओत प्रोत है, व्यापक है। यह मनुष्य के अंतःकर्ण में भी है यह श्रुति भी है जिसको ऋषि मुनि सुनते कहते और बताते चले आये हैं। और वह अपार ज्ञान भी है जो बाहरी और भीतरी दुनिया में काम कर रहा है। मनुष्य अपने अधिकार के अनुकूल इसको प्राप्त करता है। यह ज्ञान अप्राप्त है, मनुष्य की तुच्छ बुद्धि कभी इसका वास्तविक निर्णय

करने के योग्य नहीं बन सकती। इसलिये स्वामी शंकरजी का आदेश है कि जहां इसके ज्ञान में गुरु और मन का भेद हो उसको आगामी विवेक विचार के लिये छोड़ दे। जिन बातों में इन तीनों का मेल होता हो उसको माने।

गुरु सत्य है, आपत्य है, सदाचारी है, निष्काम है, पर उसके अनुभव ज्ञान आदि अति विशाल और गम्भीर हैं; सम्भव है अधिक उसके विचार समझ में न आवें, इस कारण उनको भी वैसा ही मान लो।

मन के दोष पहले कह दिये गये हैं। पर यदि इसको सुधार कर लिया जाय और बुद्धि के निर्णय और सम्मति से काम लेना सीख लिया जाय, तो उस को सार ज्ञान की प्राप्ति सरल होगी। और वह वेद गुरु और अपने संकल्प विकल्प की भले प्रकार परख कर सकेगा।

मनुष्य की लेखनी को पढ़ो, उसकी बातों को सुनो, इन पर ध्यान के साथ विचार करो। सचाई को ले लो झूँठ को छोड़ दो और सत्य को अपने अंतःकरण में धारण कर लो।

ज्ञान की प्राप्ति के तीन मार्ग बताये गये हैं 'श्रवण' 'मनन' और 'निध्यासन'। श्रवण सुनने को कहते हैं। सोच-मनन विचार का नाम है। निधध्यासन इष्ट तक पहुँच कर उस पर जम जाने को कहते हैं।

क्या तुम अन्न को साफ करने के लिये पहले बरतन में नहीं रखलेते हो? फिर सूप को हिलाते हो जिससे मिट्टी कंकड़ आदि अलग होजाँय। जब नाज इस प्रकार फटक कर साफ हो जाता है वह ही रख लिया जाता है। वह भोजन के काम में आता है। कोई समझदार पुरुष मिट्टी और कूड़ा मिले हुये नाज को नहीं खाता।

यह बात तुम संसार के सब कामों में देखोगे और सब थोड़े बहुत इसी नियम पर काम कर रहे हैं। फिर ज्ञान की प्राप्ति में क्यों न इससे काम लिया जाय।

जो बात तुम सुनो ध्यान से सुनो ताकि वह मन में ठहर जाय और याद रहे, फिर उस पर विचार करो? जो सत्य न प्रतीत हो अथवा उसमें किसी प्रकार की कमी या मिलावट हो, उसको छोड़ दो, जो सत्य है उसको ले लो। और लेकर पचा जाओ? ताकि वह तुम्हारे मन के अंग का भाग बन जाय। इस प्रकार काम करने से आत्मा को बल, मन को दृढ़ता, मस्तिष्क को पूर्णता और विचारों को उदारता मिलती जायगी और आत्मिक उन्नति में सरलता होगी।

इस बात की कभी आवश्यकता न समझो कि किसी पुनीत व प्राचीन पुस्तक पर बिना विवेक विचार के विश्वास करलो। अंध विश्वास अच्छा नहीं। हम यह कभी नहीं कहते कि किसी धर्म की धार्मिक पुस्तकों के विषय मिथ्या हैं। हमारा आशय केवल इतना है कि हमको उनके उन वचनों से गतलब होना चाहिये जिनको हम ग्रहण करते हैं और जिनकी जाँच की कसौटी शंकाचार्यजी ने बतादी है।

अंतःकर्ण की प्रेरणा अथवा आकाश वाणी और मनुष्य के वचनों के साथ जिज्ञासु को एक सा व्यवहार करना उचित है। किसी बात को कभी केवल इस कारण कि वह एक सभ्य पुरुष ने कही है मत मानो। सबकी जाँच और परख करलो?

इस प्रकार काम करने से तुममें नई योग्यता पैदा होगी। जाँच पड़ताल निर्णय और विवेक विचार को शक्ति मिलेगी और तुम जीवन को किसी समय उसके वास्तविक रूप में देख सकोगे। और दिन प्रति दिन अपनी आत्मिक उन्नति का परिचय करते

जाओगे। तुम में बराबर अच्छाई और निर्मलता आती जायगी।

पर इसमें इतनी ओर सावधानी की आवश्यकता है कि तुम बुराई से अपने आप को बचा रक्खो? और जहाँ तक सम्भव हो मन को बुरे संकल्प विकल्प भ्रम और संशयों से खाली करते रहो।

ऊपर के लेख से ज्ञात होगया होगा कि ज्ञान बिना तपस्या या परिश्रम के हासिल नहीं होता। जिसमें निजी विवेक विचार है और साथ ही किसी महात्मा या अनुभवी पुरुष के आत्मिक संस्कार का संग भी है, जिसके वह प्रेम और आदर का दम भरता है, तो उसका ज्ञान और अभ्यास ठीक होगा। और सदा ब्रह्मांड के ज्ञान के भंडार से ज्ञान प्राप्त करता हुआ आत्मिक रहस्यों का अनुभव करता जायगा। काम चाहे वह कैसा ही करता हो। वैद्य हो, कला कौशल वाला हो, या उपदेशक सब, सार वस्तु की ओर उसके पग को बढ़ाते रहेंगे। और वह लगन के साथ काम करता हुआ आत्मा के कोषों या पर्दों को उतारता हुआ प्रकृति पर आत्मा का अधिकार जमाने में सफल होगा।

आत्मिक ज्ञान जिसका साधन अंधों के समान किया जाता है उससे आत्मा के परदे नहीं उतरते। आज कितने मनुष्य रसमी बातों के बन्धन में हैं। कैसी लीक पीटने का दम भर रहे हैं या पक्षपाती हैं। जो मूढ़ गंवार और बे समझ हैं इस प्रकार का काम अधिक करते हैं। यह सुगम तो अवश्य है, पर याद रहे तपस्या अर्थात परिश्रम ही सिद्धि, पूर्णता और जीवन संग्राम की उन्नति का सर्व श्रेष्ठ नियम है, और जो पुरुष जिस क़दर सचाई को समझ कर हाथ पाँव मरता हुआ, उस साधन से काम लेगा, वह उतना ही अपार आनन्द, ज्ञान और अपरम्पार अस्तित्व के निकट और समीप पहुँचता जायगा, जितनी बुद्धि निर्मल और शुद्ध बनेगी

उतनी ही ज्ञान की प्राप्ति होगी। जितनी ज्ञान की प्राप्ति होगी उतने ही हम संसार से ऊपर चढ़ेंगे। पर इसको याद रक्खो कोई मनुष्य इस पथ में अकेले नहीं जा सकता। हम सब लोग अधिकाँश उस परम गुरु की संतान हैं और उसी से पालन-पोषण हो रहा है।

सतगुरु संग बाँध युग चलो।
चोट न खाओ काल बल दलो॥ रा० स्व० म०

गुरु का ध्यान रखना मुकद्दम है। पर ऐसा न हो मनुष्य आदमी का पुजारी हो जाय। और अपनी आत्मिक उन्नति में कांटे बो दे। कबीर साहब की वाणी है :—

गुरु पशु नर पशु त्रया पशु वेद पशु संसार।
मानष सोई जानिये जाहि विवेक विचार।

जो सार तत्व को न समझ कर गुरु की मिथ्या टेक बाँधते हैं वह गुरु के पशु कहलाते हैं। इसी प्रकार नर पशु और त्रया पशु हैं। जो वेदों को पढ़कर उनके अर्थ को न समझ कर उनके उपदेश का साधन नहीं करते अथवा जिह्वा से वेद-वेद चिल्लाते हैं वह वेदों के पशु हैं। मनुष्य वह है जिसमें बुद्धि विचार है।

नादान की पहचान क्या है? नासमझ वह है जो केवल दूसरों की बात को सुन कर खुद विचार नहीं करता और उनको समझदार ख्याल करके अंधों की तरह विश्वास कर लेता है। पर यह दूसरे लोग चाहे बुद्धिमान न हों पर चतुर जरूर होते हैं जो भेड़ों को मूड़ कर अपना काम निकाल लेते हैं और सार तत्व पर पर्दा डाल कर रखते हैं। भेड़ धसान चाल बुरी है। हर मनुष्य को अपने लिये आप विचार करना चाहिये वरना वह सचाई की भूख से तड़प-तड़प कर जान दे देगा। सर्वोत्तम श्रेष्ठ और उन्नतिशील आत्मा भी हैं, जो दूसरों को उपदेश करते रहते हैं, कि अपने अंतर में घुसकर देखो। सार वस्तु का सार द्रश्य मनुष्य के मन में है,

यदि वह आप इसको नहीं देखता केवल दूसरों के कहने सुनने में में पड़ा रहता है तो वह अंधा है। किसी दिन कुये में गिरेगा। दुख और संकट में जान दे देगा।

एक फारसी के कवि की वाणी का अमूल्य अर्थ है :—कितने खेद का विषय है कि तुम बन और सर्व (वृक्ष) की सैर को जाते हो। तुम आप कमल से कम नहीं हो मन का द्वार खोलो, और अपने भीतर के चमन को देखो।

संसार में ऐसे कितने धार्मिक सूफी फिलोसफर और साइन्स जानने वाले मिलेंगे जो औरों की राय पर बड़े गर्व से बहस करते हैं। आप न खोज करते हैं न अपने अंतर में देखने के इच्छुक हैं। इनकी बाबत कबीर साहब की वाणी है:—

साखी लाये बनाय कर इत उत अक्षर काट।
कह कबीर कब लग जीये झूँठी पत्तल चाट।

अर्थ—दूसरे कवियों के वचनों में कतर ब्योंत करके दोहे बना लाये। तुम इस प्रकार झूँठा खाकर कब तक जी सकोगे।

संसार में जितने आविष्कार होते हैं। जितने ज्ञान हैं सब मनुष्य की समझ बूझ के परिणाम हैं। उन लोगों ने अपने अन्दर विचार किया और उस सार तत्व को जाना। वह अपने अपने अनुभव का प्रचार करते रहे। पर कभी-कभी मारे भी गये। सूली पर चढ़ाये गये। विष दिये गये—गालियाँ सहीं। पर सचाई को हाथ से नहीं जाने दिया। क्योंकि उसको भले प्रकार समझ चुके थे। सचाई उनकी जान थी। और अंत में उनकी विजय हुई। यह अपना पथ छोड़ गये हैं ताकि अनसमझ पथिक उस पर चलकर धुर तक पहुँच जाय। पर इसके साथ-साथ पथिक में भी कुछ अपनी गाँठ की समझ बूझ होनी चाहिये, वरना वह इस शाहराह की मंजिल को भी भूल जायगा और बन में भटकता हुआ।

असफल और निराश होकर अपना जीवन समाप्त कर देगा।

राह कहीं दूं दें कहीं किस विधि आवे हाथ।
कह कबीर जब पाइये भेदी लीजे साथ।
भेदी लिया साथ कर दीनी वस्तु लखाय।
कोटि जन्म का पंथ था पल में पहुंचा जाय।

मनुष्य दूसरों पर आशा लगाये रहते हैं पर उसकी भी हद है। हम उस ब्रह्मांड के अंश हैं। कौन इससे इन्कार कर सकता है? हम रचना के निरंतर विस्तार की कड़ियाँ हैं। कड़ी एक-दूसरे से सटी रहती है। उनको भी आपस में मिले रहने के लिये जुड़कर रहना पड़ता है, यदि ऐसा न हो तो उन पर भी काई लग जाती है। काम में रहें तो वह चिकनी और सुन्दर बनी रहेंगी।

सब संसार का ज्ञान प्राप्त करना कठिन है। कोई व्यक्ति यह अभिमान नहीं कर सकता कि हम सब कुछ जान लेंगे। ऐसा कहना नादानी है। इस कारण हम विवश हैं कि दूसरों के अनुभव से लाभ उठावें और अवश्य उठायें। जिन्होंने अपने अनुभव, आविष्कार इत्यादि के सम्बन्ध में लेख लिखे हैं। उनका अभिप्राय ही यह था कि लोग पढ़ें लिखें और जान जांय। जिसने जिस विद्या में पूर्णता प्राप्त की है उससे शिक्षा लो। उसकी शिक्षा को अपने जीवन का अंग बनालो। इसको समझ बूझ कर सहज रीति में अपना बनालो। केवल देखा-देखी और बे समझे बूझे नकल उतारने से बचे रहो। और साथ ही यह भी याद रक्खो कि प्रकृति ने हर व्यक्ति को हर काम के लिये नहीं बनाया है।

जीवन में अपने मिशन (स्वभाविक कर्म) को समझ कर उस काम में लगजाओ। अपने अन्तःकर्ण में घुस कर उसका ज्ञान प्राप्त करो और बाह्य पदार्थों, बाहरी दृश्यों से सहायता लेकर

उसको खूब समझ कर अपना करलो। नहीं तो वह भी तुम्हारे बन्धन की कड़ी बन जाँयगी और तुमको कहीं का न छोड़ेंगी।

जो कुछ होता है उन दृश्यों से आँख न मीचो, तुम्हारी आँख मीचने से सूर्य छिप नहीं जायगा। शुतर मुर्ग की बाबत कहा जाता है जब भागते-भागते थक जाता है तो अपने छोटे से सिर को शिकारी से डर कर झाड़ी में छिपा लेता है। और समझता है कि उसको शिकारी नहीं देख रहा है। और शिकारी जल्दी ही उस को पकड़ लेता है। दृश्य हैं और सत्य हैं। इनको देखते हुये तुम विचार के स्वप्न में न रहो। इनको विचारो उनको अपना बनाओ यह तुम्हारे विचारों के लिये नये वस्त्र हैं। इनको पहनो। साइन्स, अध्यात्म, धर्म और कर्म के सब कामों से ज्ञान की शिक्षा लो। देखो पुराने और नये विचार कैसे प्रचंड होकर भिड़ रहे हैं। साइन्स और धर्म में कैसा संग्राम ठना है। जन्म और पुनर जन्म के विषय में कैसा विरोध है। यह सच्चे दृश्य हैं। तुम इनका परस्पर निर्णय करो। इनकी सचाई को ग्रहण करो। क्योंकि सत्य में हर वस्तु का अंश रहता है। तुम इनके आधीन मत हो, इनको अपना बनालो। विवेक से, विचार से, बुद्धि से, चित से इनका परस्पर मुकाबला करके देखो। यह अधिकांश इन ही ख्यालों को नये वस्त्रों में प्रगट कर रहे हैं, हजारों वर्ष पहले ऋषियों की इस पवित्र भूमि में वे जन्म ले चुके थे। जन्म लेना अथवा इस रचना का नियम कहता है मनुष्य शरीर में जीवन ने धीरे-धीरे उन्नति की है, प्रथम मछली की, फिर कछुआ बना फिर और पशु बने, बन्दर बने और फिर और पशु बनो इत्यादि-इत्यादि इस प्रकार के विचारों को समझो जो तुम्हारे पुराणों में भरे पड़े हैं। प्रथम मच्छ औतार हुआ जो पानी में रहता था, फिर कच्छ औतार हुआ जो जल और पृथ्वी दोनों में रहता था। फिर

वाराह औतार हुआ जो जंगल में रहता था। नरसिंह औतार में सिंघ (पशु) और मनुष्य की मिलोनी है। इसके बाद परशुराम औतार है जिसमें सिंह का भयानक रूप और मनुष्य का कर्तव्य है। परशुराम के बाद राम प्रगट होते हैं जिनका मनुष्य रूप में सादा जीवन मर्यादा पुरुषोत्तम का है। कृष्ण सोलह कला के कहलाते हैं जो यथायोग्य व्यवहार करना जानते थे। यह सच्चे मनुष्य का उदाहरण है। सार और असार में निर्णय करने के नियम का पालन करना मनुष्य का सर्वोत्तम गुण है—"मानष सोई जानिये जाहि विवेक विचार" फिर मनुष्य बुद्ध के रूप का बनता है जो अपने दैवी स्वभाव, और संत के रूप में प्रगट होता है। इत्यादि। पर यह याद रहे कि यह सत का पूर्ण रूप नहीं है। यदि नीचे से उन्नति करके मनुष्य में पूर्ण बनने का ख्याल एक ओर है तो दूसरी ओर यह भी विचार है कि मनुष्य से धीरे-धीरे सब की उत्पत्ति हुई और मनुष्य किसी और असितत्व का चित्र है। इसी प्रकार सब दृश्यों, भावों, विचारों, अनुकूल व प्रतिकूल दृश्यों का ज्ञान प्राप्त किया जायगा, तो इनसे हम में दृढ़ता आवेगी। हाँ यदि भ्रम में पड़ गये तो भ्रष्ट हो जावेंगे।

शब्दों के पुजारी मत बनो केवल उनके सार और अर्थ को समझो। शब्द जाल में फंसे हुये मनुष्य उस मृग तृष्णा के समान हैं जो प्यास बुझाने के हेतु रेत में सूर्य की किरणों के प्रतिविम्ब के जल के भ्रम में पड़ कर तड़प-तड़प कर जान दे देते हैं। मृग तृष्णा का जल ऐसा ही होता है।

मौलाना रूम का वाक्य है:—"यदि सारे वस्तु के भेद का ज्ञान लेना चाहते हो तो शब्द जाल में न फंसो उनके अर्थ पर निगाह रक्खो।"

हमारे शास्त्रकारों ने जो अलंकार और प्रमाण देकर उस तत्व को समझाने का यत्न किया है केवल उनके सार को समझो अनेक शैली प्रगट करने की हैं।

वह लोग सार तक कम पहुँचते हैं जो किसी चतुर मधुर भाषी और स्याने लेकचरार के भाषण के भंवर में फंस जाते हैं। हम में सोचने विचारने का स्वभाव होना चाहिये। इसी प्रकार जो जादू टोने और सिद्धि शक्ति को, करामात या कोई अद्भुत वस्तु समझ कर, उसके भ्रम में फंस जाते हैं वह हमारे अर्थ को न समझ सकेंगे। जब मनुष्य को ईश्वर ने बुद्धि दी है उससे काम न लेना एक घोर पाप है।

जो लोग सोचते हैं वह विचारों के बीज बोते हैं। जो केवल कथनी कथते हैं अंत में हार कर चुप बैठ जाते हैं। "पढ़-पढ़ सूआ रामा राम" यह भी तोते के समान रट लगाने वाले पशु हैं जिनको सार ज्ञान का पता कभी नहीं मिलता। हम देखते हैं कुछ-कुछ हिन्दू कैसी रुचि से भगवद गीता का पाठ करते हैं। मुसलमान कुरान शरीफ को पढ़ते हैं। हमारे सिख भाई ग्रंथ साहब का पाठ करते हैं। पर क्या इस प्रकार के पाठ से उनके जीवन में परिवर्तन होता है? क्या अच्छा होता? यदि यह सज्जन साच समझ कर और विवेक विचार से पाठ करते! गीता हरि के द्वार की कुंजी है। गुरु ग्रंथ साहब के कौन से ऐसे वचन हैं जो पाठ करने वालों को सार तत्व का ज्ञान और भेद नहीं बताते? हमारी दृष्टि में ऐसा पाठ करना जिससे हम साधन सम्पन्न न बनें समझ में नहीं आता। पाठ तो ज्ञान प्राप्ति के लिये है।

जीवन वास्तव में उन्नति का नाम है। यत्न यह होना चाहिये हम दिन प्रतिदिन उन्नति करते जाँय। हम में नये-नये विचार आवें। हम आत्मिक ध्येय के निकट पहुँचते जाँय। हमारी आँखों

को प्रकाश मन को आनन्द चित्त को उदारता मिले। शांति हमारे बाँट में आवे। यदि ऐसा नहीं है, तो हम जीवन से दूर और मृत्यु के निकट हैं।

कीचड़ में न रहो ऊपर को उठो। सोओ मत जाग जाओ। पहले तुम मूढ अवस्था में थे। फिर पशु बने। अब मनुष्य का चोला पहना, क्या फिर भी पशु रहना चाहते हो? नहीं ऐसा न करो? चैतन्य के स्थल में आओ। यह एक साधु की घोषणा है।

जीवन का राग सुहावना है। पर इसका रस, आनन्द केवल उनको मिलता है जो सहज-सहज उस इष्ट, अधिष्ठान के निकट पहुँचते जारहे हैं। पीछे फिर कर नहीं देखते। लौटना अच्छा नहीं इसका ज्ञान तुमको अंतःकर्ण में, दिव्य दृष्टि से और आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति से मिलेगा।

जब तक तुम अपने अंतर में नहीं घुसते तृप्ति न होगी। न सार को समझ सकोगे। बाहर छिलका है, भुसी है, चमड़ा है, मैल है। अंदर में चावल है। गूदा है, मास रक्त है, आत्मा है, सार है। कुछ लोग इस पर हंसेंगे। इनको हंसने दो। इनको हंसते ही छोड़कर अपने काम में लग जाओ। नये विचारों से काम लो पुराने विचारों को यदि काम के नहीं तो छोड़ो। पुराना नया हो रहा है। प्राचीन विश्वास की भींत ढह रही है। परिवर्तन जीवन का नियम है। पुराने गुरु की टेक छोड़ो। नये गुरु को ढूँढ़ो। जो जीवन में काम आवें। पुराना कस्तूरी का नाफा जो खाली है उसको दूर फेंको। नये नाफे की तलाश करो। जो तुम्हारे मस्तिष्क को सुगन्धित करदे। चैतन्य ही में क्यों न चले आओ जहाँ तुम को असली नाफा हाथ लग जायगा।

जीवन घड़ी-घड़ी बदल रहा है, क्या ठिकाना कब अन्त समय आजाय। कौन सी स्वांस आखिरी स्वाँस हो। मान करो

हाल के जीवन का और उसको ज्ञान के साधन में लगाओ। औरों की बातों पर इतने न जाओ। खुद समझ बूझ कर परिणाम तक पहुँचो और उससे लाभ उठाओ।

यहाँ एक बात और सुन लो। संसार में कोई वस्तु नई नहीं है, सब पुरानी हैं। क्योंकि तुमको वह अब मिल रही है, नई मालूम होती है। उनका रूप नया अवश्य है।

सच्चे ज्ञान के लिये जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह अन्तःकर्ण का जाग्रत है, उन्नति है। बाहरी साधनों से सहायता लेकर अपने अन्तर में आओ। अन्तर के गुरुकुल में गुरु के शब्द को सुनो। छोड़ो बाहर के चटसार को। सच्चा ज्ञान भीतर की पाठशाला में मिलता है। वहां पुस्तक खुली हुई है, गुरु के पढ़ाने की धुन गूंज रही है।

मौलाना रूम के वचनों का अनुवाद कैसा सुन्दर है! कविता फारसी भाषा में होने के कारण लिखने को विवश हैं।

अर्थः—(१) कान को पास करलो। वह दूर नहीं है। पर तुम से खोल कर कहने का दस्तूर नहीं है।

(२) हे रणधीर! आकाश को पाँवों के नीचे लेआ। और वहाँ चढ़कर अनहद शब्द को सुन।

(३) भ्रम व भटक की रुई कानों में से निकाल दे। तो आकाश में तुझको शब्द की धुन सुनाई देगी।

(४) तेरे हृदय का आकाश उस दिव्य वाणी के उतरने का स्थान बने जो अन्तरी धुन है।

(५) यदि मैं तुम को इन अन्तर के रागों का हाल लेष मात्र भी सुनाऊं तो मरे हुए कबरों को फाड़ कर भाग छूटेंगे।

जिनको कंत मिलाप है तिन मुख बरसत नूर।
घंट शीतल हृदय सुखी बाजे अनहद तूर॥ रा० स्वा० म०

इस शांति देने वाली धुन को सुनो। गुरु से मिलो, सच्चे शिष्य बनो। वह गुरु कहाँ है जो सार तत्व का राग गा गा कर सुनाता रहता है? वह शिष्य कहाँ है जो उस शब्द या राग को सुनता है? कैसे मिलना होता है? कैसे अलग हो जाते हैं? कबीर महाराज अपनी गुरु वाणी में यह उत्तर देते हैं:—

गुरु तुम्हारा कहाँ है? चेला कहाँ रहाय?
क्योंकर के मिलना हुआ? क्यों बिछुड़े आवे जाय?
गुरु हमारा गगन में चेला है घट माँह।
सुर्त शब्द मेला भया बिछड़त कबहू नांह।

अर्थ—इसका यह है कि गुरु की बैठक आकाश में है और चेला मन में रहता है। सुर्त शब्द के अभ्यास से मेल होजाता है, फिर कभी नहीं बिछुड़ते।

इस गुप्त धुन को सुनो? उसको सुन कर वहाँ चलो जहाँ से वह आवाज आती है। खोजो उसके सार रूप को। उस से मिलो। उसके साथ तुम्हारी शादी हो। उसके गीत गाये जाँय। और अपने प्राण पति से मिलकर सुख भोगो। देवता फूल वर्षावें। फिर तुमको इस संसार में न आना पड़ेगा, न दुख और कष्टों का सामना होगा।

४—सादा जीवन की महिमा

इस से प्रथम जो समय बीत गया है वह भी अपने ढंग का अनोखा था। जो अपने साथ विशेष प्रकार की सादगी रखता था। बुरा तो यह समय भी है। लोगों की आवश्यकतायें भी कुछ विचित्र ढंग से बढ़ी हुई हैं। पर यह शीघ्र ही बीतने वाला है।

यदि ध्यान पूर्वक विचार किया जाय तो यह मालूम होता

है कि धीरे-धीरे मनुष्य के स्वभाव में एक विशेष प्रकार की कमी आती जारही है। चाल-चलन, तीज-त्यौहार, रस्म-रिवाज, बोल-चाल, आपसी व्यवहार आदि सब बदल रहे हैं और जहां तक हम देखते हैं चाहे इस समय तो कम, पर धीरे-धीरे इन सब बातों में भारी सादगी आजायगी।

अभी थोड़ा समय ही बीता है, बिरादरी की दावतों में खाने पीने का कैसा बंदोबस्त करना पड़ता था। चड़क-भड़क के ध्यान से लोग एक २ मनुष्य के सामने पांच-पांच छः-छः मनुष्यों का भोजन परोस देते थे। थाल के सामने सैकड़ों प्रकार की सब्जी तरकारियाँ, अचार, मुरब्बे, चटनी वगैरा परोसे जाते थे। एक साथ इतना सामान रक्खा जाता था कि आदमी हर चीज में से एक-एक ग्रास खाय तो पेट भर जाता था।

यही हाल खाना पकाने का था। जैसे खिचड़ी ही बनाई जाय तो बड़ा समय लगता था। तरह २ के मसाले पड़ते थे और फिर रोटी भी कई प्रकार की बनती थीं। और रोज के खाने में भी ऐसा दिखावा होता था जिसका कोई हिसाब नहीं। अब क्या हाल है? कुछ तो गरीबी, कुछ दो भिन्न शिष्टाचारों की मुठ भेड़, कुछ मनुष्य की समझ-बूझ व समय की माँग ने, कुछ संसार की उन्नति की चाल ने, सब दशाओं में ऐसी सादगी बरती है कि देख कर आश्चर्य होता है!

जो लोग पढ़े-लिखे कहलाते थे उनकी लेखनी का ढंग देखते ही बनता था। सफे के सफे अलंकार और आदाब से ही भर दिये जाते थे। जब से पोस्टकार्ड जारी हुये तब से इस लिखावट का कहीं पता नहीं रहा। दिन प्रति दिन सूक्ष्म तौर से प्रगट करने का सुभाव बनता जा रहा है। और लोग अधिकाँश मतलब पर दृष्टि रखते हैं। तार ने और भी कमाल कर दिखाया! कोई य

कभी न कहे कि हम काल के प्रभाव में नहीं आते। यह कठिन है। सबको काल का लोहा मानना पड़ता है।

धार्मिक विचार वाले प्राचीन समय की भाषाओं के प्रचार पर बल देते आये। इनमें इनकी धार्मिक पुस्तकें हैं इस कारण यह सन्मान अति महत्व का था। यह विचार अब भी दृढ़ है पर इस को भी अब तो अत्यंत हानि पहुँच रही है। प्राचीन भाषाओं के प्रचार को जीवित रखने का क्रम चाहे अब भी जारी है, पर निश्चित रूप में उसमें भी कमी आगई है। इसका आगे चल कर क्या परिणाम होगा ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। पर जो लोग काल की गति देख रहे हैं वह जानते हैं कि जन साधारण का मत है कि प्रचलित भाषा में जो सब समझ सकें, नये विचारों को प्रगट किया जाय। प्राचीन भाषा के सन्मान को तो लोग सब ही आदर की दृष्टि से देखते हैं, पर हाल के समय का सौ में से एक मनुष्य भी ऐसा नहीं है जो उस भाषा से यथा योग्य अपने मस्तिष्क को जाग्रत करके लाभ उठा सके। नमाज़ व प्रार्थनायें अब भी प्राचीन भाषाओं में की जाती हैं, जिसका भाव लोग नहीं समझ पाते और यों ही देखादेखी याद करके करते हैं। जिसका पूरा-पूरा प्रभाव जैसा होना चाहिये नहीं होता। ईश्वर का दरबार चाहे मंदिर हो या मसजिद, जब तक हम अपने भावों को अपने हृदय से न प्रगट करेंगे वह कैसे सुनेगा? इस कारण अब हर जाति इसका अनुमान करके अब इसकी इच्छुक है कि ईश्वर की प्रार्थना भी अपनी नित्य की बोली में की जाँय!

धार्मिक जगत में यह शिक्षा प्रथम बुद्ध भगवान के समय में शुरू हुई। इसके बाद प्राकृतिक भाषा का रिवाज हुआ। कबीर सा०, तुलसीदासजी, सूरदासजी आदि-आदि महात्माओं ने उसकी रीति चलाई। अब भी जन साधारण की रुचि उस ओर है।

यूरप ने उसका अंतिम निर्णय कर दिया। प्राचीन भाषाओं का स्थान अब उनकी रोज की बोलचाल ने ले लिया। और अब उनके कलीसाओं की मेजों पर साधारण बोल चाल में सब धार्मिक भाव प्रगट किये जाते हैं। एशिया की जातियों में अभी कतई फैसला नहीं हुआ।

प्राचीन समय में विद्या या ज्ञान के अधिकारी केवल कुछ गिने चुने पुरुष थे। या तो पुजारी आदि का इस पर अधिकार था या कुछ उन लोगों का जो कवि या लेखक थे। स्त्रियाँ और नीची जाति के लोग इससे पूर्ण रूप में अनभिज्ञ थे। इसके बाद समय आया जब कुछ लोग पढ़ने लिखने लगे। पर विद्या इनके लिये केवल एक साधारण बनाव शृंगार का काम देती थी। और जो लोग व्याकरण आदि पढ़ लेते थे वह बड़े ज्ञानी माने जाते थे। अंग्रेजी राज के साथ-साथ विद्या व कला कौशल की उन्नति का सामान आया। विद्या का द्वार सबके लिये एक सा खुल गया। सब पढ़ने लिखने लगे। और वर्तमान समय में विद्या न पुजारियों की बापौती, न लेखकों की, न बड़े मनुष्यों का आभूषण है, बल्कि मानुषी चित और मस्तिष्क की उन्नति और सुधारने के अतिरिक्त उसका यह काम भी होगया कि एक बड़े रूप में, समाज को रोटी कमाने का कारण बन गया। वर्तमान समय में जीवन स्थित रखने के लिये घोर संग्राम और कठिनाई का सामना होरहा है। और यह समझ लिया गया है कि जिसको जितनी योग्यता होगी वह उस काम में वहीं तक पूरा उतरेगा। यूरप और अमेरिका में जो शिक्षा अब दी जाती है उसी की दृष्टि से दी जाती है। और हम में भी वही विचार थोड़ा बहुत काम कर रहा है।

प्राचीन समय में जो कवि और इतिहासकार होते थे वह अपनी कविता को किसी विशेष राजा या अधिकारी के नाम से प्रचलित करते थे। जिससे सहज रीति में उसका अधिक प्रचार हो। अब यह हाल नहीं है न इसकी आवश्यकता प्रतीत होती है।

पहले जो मकान बनाये जाते थे उनकी नींव पाताल में गाढ़ी जाती थी। यह प्रथम ही ख्याल कर लिया जाता था कि वह पोतों परपोतों व अगली संतान के रहने योग्य बन जाय। अब इस ख्याल का अभाव है, घरों को यथासम्भव लोग मज़बूती के विचार से नहीं बनाते बल्कि अपनी समझ बूझ के अनुसार सुन्दर और रमणीक बनाते हैं। बर्तन भांड़े माल असबाब की बाबत भी यह ही ध्यान दृष्टि में रहता था। पर अब सबकी दृष्टि "समय" और समय की आवश्यकता की ओर है।

हम में प्राचीन समय के बूढ़े बड़े सम्मिलित कुटुम्ब जायदाद का गीत गाने के अनुयाई हैं। गावों में वह व्यक्ति अधिक आदर्णीय समझा जाता था जिसके कुटुम्ब के लोग पीढ़ी दर पीढ़ी से एक ही घर में प्रेम से रहना पसंद करते थे। एक कमाता था सब खाते थे। या यों समझो कि एक महनत करता था दूसरे अपाहिज बन कर खाट तोड़ते थे। समय ने पलटा खाया अब कुटुम्ब के साझे रहने का नियम टूट गया। और सबको अपनी २ पड़ गई। क्योंकि गरीबी ने, खेती की कम उपज और रहन सहन के विचारों के परिवर्तन ने, हमारी दशा को कुछ का कुछ बना दिया। जो कमावे वह खावै जो सोवे वह रोवे। अपनी करनी पार उतरनी। किसी का भरोसा करना भूल है। अब समय और है। समय की मांग और है।

ओढ़ने पहनने में पहले की अपेक्षा अब अधिक दिखावा आ गया है। पढ़ा लिखा समाज अधिक तर इस विशेष दिखावे का

शिकार है। पर थोड़े समय के बाद इसमें भी सादगी का व्यवहार करना पड़ेगा। और धीरे धीरे वह भी सुधर जायगा।

यह सब बातें समय के चिन्ह हैं। इन के विचार से साफ मालूम होरहा है कि समय अब बड़े जोर-शोर से मेल-मिलाप के लाने में प्रयत्नशील है। जिसका झंडा "सादगी" है। जो सचाई को दिल देगा। जिससे जात पांत का मिथ्या गर्व न रहेगा। लोग मन्दिर और मसजिद के नाम पर लड़ाई न करेंगे और हर स्थान पूजा की जगह समझा जायगा। हर व्यक्ति ईश्वर का पुजारी होगा। हर एक का मन ईश्वर के रहने का मन्दिर बनेगा। सब लोग सुख चैन से जीवन बितायेंगे और खुश होकर एकतोवाद का राग गाते हुए आपस में मिले हुये दूध और मीठे के समान रहेंगे। स्वार्थसिद्धि और इन्द्रियों के विषयों के आधीन रहना भूल जायेंगे, इसी को हम सतयुग कहेंगे जो कलियुग के पेट से निकलता है।

◆◆◆◆◆

४—जीवन का राग

जीवन सुख है और मृत्यु दुख है। जीवन के ख्याल में चैतन्यता है, परिश्रम है, रुचि है और खुशी है। मौत के ख्याल में जड़ता है, अरुचि है, आलस्य है और रंज है। कौन व्यक्ति है जो मौत के मुख में जाने का इच्छुक होगा। पर फिर भी हम दुनिया में आत्महत्या की घटनायें सुनते हैं। और जीवन के विरुद्ध हुल्लड़ मचा हुआ देखते हैं। फिर क्या यह सच है कि लोग मरने की इच्छा रखते हैं? नहीं उनके मन में घुसकर देखो वह मौत नहीं चाहते केवल अपने असह्य जीवन में परिवर्तन चाहते हैं और इस परिवर्तन की आड़ में वह कामना काम

[illegible] बौद्धों जैसी परम पुनीत और महान अस्तित्व की [illegible]क और निर्वाण की ओर ले जाने वाली है। वह भी जीवन है। जीवन फैलता है। मृत्यु सुकड़ती है। जीवन एक चौड़ा मैदान है जहां सूर्य की चमकने वाली किरण खुशी से खेलती हुई एकत्व का राग गाती है। मृत्यु एक भयानक चिता है जिस पर बिना प्राण का मृतक शरीर जलता है। और इसके अंग बिखर जाते हैं। अथवा अंधेरी तंग कब्र है जहाँ प्रकाश का नाम नहीं। जीवन का ख्याल स्वर्ग है और मृत्यु का नर्क।

क्या तुम जीवित रहने के इच्छुक हो? जीओ, फूलो फलो, फैलाओ और फैलो। जिससे कहीं तंगी तंगदिली का पता तक न रहे। पक्षपात की जड़ कट जाय, हर वस्तु में उसका रूप चमकता नजर आवे जो सर्व व्यापक सबका स्वामी और निज रूप है। ओहो! वह मन! मन भी कैसा शक्तिशाली है। जो अपने में उस सर्व व्यापक को भी प्रगट करने का साहस करता है। क्या वास्तव में हमारा मन ऐसा ही है? यदि नहीं तो किस का ध्यान? किसका भजन किसका स्मरण। धर्म वालो! आओ इसी एक बात पर विचार करो। उस समय तुम अपनी निज महिमा, और महत्त्व को जानने योग्य बनोगे।

हम जीवित हैं, अनादि हैं, हमेशा से हैं और हमेशा रहेंगे। हम में ऐसा जीवन है जो मृत्यु और विनाश को नहीं जानता। और सुनो! अर्जुन के पूज्य सखा और सार्थी कैसी जोरदार घोषणा कर रहे हैं "कोई समय ऐसा नहीं था जब मैं न रहा हूँ या तू न रहा हो। या यह राजकुमार न रहे हों। न कोई ऐसा समय आवेगा जब हमारे अस्तित्व का अन्त होगा। शरीर का [illegible]ने वाला इसी शरीर में बल, जवानी और बुढ़ापे को

भोगता है। फिर दूसरे शरीर में जाता है। इस आवागमन पर बुद्धिमान दुख नहीं मानते।"

"इन्द्रियों के सम्बन्ध से हे कुन्ति पुत्र! गर्मी और सर्दी। रंज और खुशी जाते और आते हैं। यह नाशवान हैं। हे भारत! इन को सह। हे मनुष्य श्रेष्ठ! जिनको वह नहीं सताते, जो सुख दुख में समान रहते हैं, शांत हैं, केवल वे ही अमर हैं।

जो "है" वह "नहीं" नहीं हो सकता, जो "नहीं" है वह "है" नहीं होसकता। तत्ववेत्ता ऋषियों ने उस के सार को देख लिया है।

"जो सर्वव्यापक है उसको तू अमर जान। उस अविनाशी का कौन नाश कर सकता है?"

"न वह कट सकता है, न जल सकता है, न गीला हो सकता है, न सूखा हो सकता है, वह अनादि, सर्वव्यापक, अमर और सनातन है"। भगवद्गीता अध्याय २।

यह हमारी अपनी महिमा है किसी अन्य की नहीं। यदि हम में अमर पद का विचार है और अनादि होने का विश्वास हमारे हृदय में दृढ़ होगया है। तो आश्चर्य क्या है?

हम दुखी हैं, क्योंकि इन्द्रियों के बन्धन में अपने आप को डाल रक्खा है। केवल मन के स्थान पर कभी २ जाते हैं, यहाँ आत्मिक स्थान से नाता जोड़ने में आना-कानी करते हैं, जो सर्व-व्यापक है। जिसमें जिस कदर उच्च विचार होंगे, जिसका मन जितना उदार होगा, वह उतना ही सूक्ष्म बन कर अधिक शक्तिशाली होगा। अधिक फैलेगा, और अधिक काल तक ठहरेगा। बर्फ का जमा टुकड़ा कठोर है। थोड़ी जगह में जल्दी पिघल जायगा और जल बन कर वह अधिक फैलेगा और अधिक स्थान लेगा और देर तक रहेगा। इस पानी को थो

भाप का रूप बदलने दो ! देखो वह नाइट रोजन, हाइड रोजन आदि गैस का रूप बन जायगा। ओहो ! क्या तमाशा है। वह आकाश मंडल में कैसा मंडलाता हुआ जाता है। इसमें कितनी शक्ति, सूक्ष्मता और कितनी देर तक ठहरने की शक्ति आगई।

बर्फ पानी और गैस तीनों एक थे, एक हैं और एक रहेंगे। इनकी और भी सूरतें होती हैं इनसे भी अधिक इनके सूक्ष्म रूप हैं जिनका ज्ञान सबको नहीं है। पर क्या कारण है कि इनमें भिन्नता हैं ? उत्तर मिलता है बन्धन की अवस्था, देश काल और वस्तु के प्रभाव के प्रतिकूल और अनुकूल प्रभावों के सम्बन्ध। इन सब ने परिवर्तन कर दिये। यह परिवर्तन आज के नहीं हैं ? सदाँ से हैं। सदाँ रहेंगे। और सदाँ थे। यह इनका आवागमन है। यह इनके जन्म जन्मान्तर का क्रम है। समुद्र से सूर्य की किरणें भाप को ऊपर खींचती हैं। वह बादल बन कर कैलाश पर वर्षा करते हैं। बरसा हुआ पानी बर्फ बनता है। बर्फ पिघल कर गंगा की उज्ज्वल लहरों में बदलती है। और यह ही फिर चक्कर खाता हुआ खेतों को हरा भरा और बागों को जल देता हुआ फिर समुद्र में जाकर मिल जाता है। और फिर वह वहाँ भाप बन कर हिमालय की चोटी पर बरसता है इत्यादि।

यह काल का चक्र है। इसमें दुख सुख क्या है ? क्यों कोई घबराये ? दुख मानने का उपाय यह है। क्यों न हम उस बड़े नियम से एक होकर उससे रचनात्मक इच्छा क्रम के पूरा करने में लग जाय और सुख चैन से जीवन के सार भेद को समझते हुए इस चक्कर के हिंडोले में झूलते जाँय और संसार को गा गा कर सुनाते जाँय ! एक फारसी की कविता का साराँश यह है। "हमारा ब्रह्म गर्दन में डोरी डाले हुये जिधर चाहता है हमको अपनी मर्जी अनुसार उधर ही ले जाता है।"

सबै ही नाँच नचावें साईं।
उमा कीट मरकट की नाईं। तुलसी दा० महा०

"और यदि तू यह समझता है कि बार-बार जन्म लेना बार-बार मरना होता है तो हे लम्बे भुजाओं वाले अर्जुन! तब भी तुझको शोक न करना चाहिये। क्योंकि जो पैदा होता है उसके लिये मरना जरूरी है। और जो मर गया उसके लिये पैदा होना आवश्यक है। और जो होना है उस पर तुझको शोक न करना चाहिये?

आदि में यह कहां प्रगट थे। केवल बीच की अवस्था में यह प्रगट हुये। हे भारत! अंत में यह फिर वैसे ही होजायंगे। फिर शोक करने की समभावना कहाँ है?

इसको कोई विचित्र जानता है। दूसरा उसको ऐसा बताता है तीसरा उसको ऐसा सुनता है। पर सुनकर उसके सार को कोई समझता नहीं। भग० गी०

हम संसार में आगये। किसी कारण से आये। यदि आप ही चले आये तो "अपनी करनी आप ही भरनी" इसका क्या इलाज? यदि किसी दूसरे की इच्छा से आये तो हमको उस दूसरे की इच्छा के अनुसार रहना भी चाहिये।

लाया जीवन आये मृत्यु ले चली चले।
अपनी खुशी तो आये न अपनी खुशी चले।

दोनों हालतों में शोक कैसा? पर खेद है! कि कितने मनुष्य हैं जो अपनी वास्तविक दशा को जानते हैं। अनसमझी से, अज्ञान से, इनको व्यर्थ का दुख है, यह "मेरा है" यह "तेरा है" यह 'अपना' है, यह 'पराया है' वास्तव में यह ही दुख के मूल कारण हैं।

कंकड़ चुन-चुन महल बनाया । लोग कहें घर मेरा ।
ना घर मेरा ना घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा ।

कौन किसका है ? यह सब मिथ्या और व्यर्थ का विचार है । इस को तोड़ दो जो तुम को बाँध न सके ।

मोर तोर की जेवरी बट बाँधा संसार ।
दासकबीरा क्यों बंधे जाके नाम अधार ।

इस भाव को एक बार मन में बसालो फिर क्या है ? न कहीं दुख न कहीं सुख ! आनन्द की अवस्था है ।

पर क्या कहा जाय । माया की रचना विचित्र है ! धर्मों पंथों को देखो यह भी मेरा तेरा पना करते हुए किस तरह कलेजों पर छुरी चला रहे हैं । क्या इन सबका ईश्वर एक है ? यदि एक है तो फिर यह झगड़ा किस बात का ? लोग दाँत पीसते हैं; घूँसे तानते हैं, लातें चलाते हैं । मालिक के नाम पर कैसा खून खराबा मचा हुआ है । यही अनेक जातियों की और धर्मावलम्बियों की दशा है ! यह सब इतने तंगदिल और तंग ख्याल बन गये कि इनकी दृष्टि ऊँची नहीं जाती ।

तुम जो थोड़ी ऊँची निगाह रखते हो तो इस गिरावट की दशा से ऊँचे जाओ । तुम जो आत्मिक भाव को थोड़ा भी समझते हो तो मिथ्या पथ से बचो ? मौत की ओर मत जाओ ? आओ जीवन की ओर । प्रकृति के घूमने वाले चक्र से मिलो । खुद चक्र काटने लग जाओ । चक्र के क्रम में सहयोग दो 'मेरा' 'तेरा' पन का ख्याल छोड़ो ?

अब तक तुम क्या कर रहे थे ! इन्द्रियों के बन्धन में बंधे विषयों का बीज बो रहे थे । हाय अफसोस ! तुम्हारी आत्मा के ऊपर कैसे मलीन, बुरे और अपवित्र कोष चढ़ गये ! अपने मुख के सामने दर्पण रक्खो, देखो वह क्या दिखाता है, चेहरे पर

झुर्रियां हैं, आंखों में झांई पड़ गईं। रूप क्या है मानो अफ्रीका का उजाड़ और भयानक मैदान है! जहाँ न वृक्ष हैं न सरोवर हैं। लू चलती है रेत उड़ती है। गर्म वायु के झोंके जल्लाद का काम करते हैं। तुम खुद अपने रूप की परछांई देखकर आँख चुराते हो, और यह क्यों? तुमने खुश रहने, खुश बनने और खुश करने का न गुरु सीखा न उसको अपनाया। एक ओर हजारों से ईर्षा दूसरी ओर अन्य धर्म वालों से द्वेश, अपनो से बैर, परायों से विरोध, इन्द्रियों के वशीभूत। "मुख में राम बगल में छुरी।" यह कारण है कि दर्पण तुम्हारे सामने रक्खा हुआ तुम्हारा मुंह चिढ़ा रहा है। एक फार्सी के कवि का कैसा भाव है?

"हर दो लोकों का आराम इन दो शब्दों पर निर्धारित है। मित्रों पर कृपा, शत्रुओं से सद व्यवहार।

तुम फोटोग्राफर के समीप चित्र खिचाने को आबैठे हो। कोशिश कर रहे हो। होठों पर हंसी, मुख पर चमक और चित्त प्रसन्न हो। पर यह दशा एक घड़ी के लिये कैसे आवे। तुम दुनिया को धोखा दे सकते हो पर अपने मन को धोखा नहीं दे सकते। वह खूब जानता है, वास्तव में क्या दशा है? समय-समय पर जताता भी रहता है। दिन के आठ पहर गालीगलोज में बीतते हैं। झूंठ और धोखे का सौदा चलता है। धन के लोभ ने गरदन में ऐसी फाँसी डाल रक्खी है कि अपने बाल बच्चों तक के प्रेम का अवसर नहीं मिलता। घर में स्त्री से हर समय कहन सुनन, पिता दुखी, माता नाराज, भाइयों को शिकायत, बहन व्याकुल, क्या इस दशा में फोटू ग्राफर तुम्हारे चहरे की हंसती खेलती तस्वीर खींच सकता है। कुभाव का गहरा प्रभाव चहरे पर पड़ गया। असम्भव है कि कोई राक्षसी रूप का चित्र देवता के रूप में उतार सके। जो कुछ हुआ सो हुआ। अब भी

संभल जाओ ! हँसी खुशी से रहो। दूसरों को खुश रक्खो। यह सारी झुर्रियां बुढ़ापे में भी जाती रहेंगी। तुम कुछ दिन के अभ्यास से अपने स्वभाव को शिष्ट सभ्य बनाकर कुछ के कुछ बन जाओगे और खुशी से अपनी इस बदली हुई दशा को धन्यवाद देने लगोगे जिस को तुम "मौत" कहा करते हो।

जीवन बढ़ने का नाम है। बढ़ना बिना परिश्रम या काम करने के नहीं आता। बीज के सिर पर मिट्टी का कितना बोझ लदा रहता है, वह देखो विचारो किस परिश्रम और संयम के साथ इस मिट्टी को कुरेदता हुआ बन्धन और पराधीनता की दशा से ऊपर की ओर खुली हवा में आता है। हिमालय की तराई और उपवन कैसा सुन्दर है ! फूल खिले हैं। वृक्ष हरे भरे हैं। नदियों का जल कैसी सफाई के साथ बह रहा है कि देखने वाले आश्चर्य में रह जाते हैं ! यह क्यों हैं ? क्योंकि उस पर्वत में उनके कारण कितनी कद्रायें और कितनी घाटी हैं। और कितनी कठिनाईयाँ झेलनी पड़ी हैं। कोई अवस्था सहज और सुगम नहीं होती। सबके लिये चिंता करनी पड़ती है। जहाँ काम नहीं है वहाँ जीवन नहीं है। व्यर्थ के तर्क कुतर्क, स्वभावों में भिन्नता और संकीर्णता को छोड़ो। सिर के ऊपर हाथों को लाकर चमकते हुये तारों को पकड़ने की कोशिश करो, एक दिन वह तुम्हारे होजायेंगे।

जीवन काम के लिये है, सेवा के लिए है, भजन बंदगी के लिये है। जीवन आलस्य के लिये नहीं। इन्द्रीविषयों को नहीं, न व्यर्थ के सुख चैन मनाने को है ! जीवन केवल बंदगी के लिये हैं। बिना बंदगी के जीवन लज्जाजनक है।

'जीवन के हजारों लाखों करोड़ों और अनन्तरूप हैं। कहीं वह वनास्पति के रूप में अठखेलियां खेल रहा है, कहीं कहीं वह पशुओं

के रूप में प्रगट है। कहीं वह मनुष्य रूप में मनुष्य का चित्र दिखा रहा है। कहीं पहुँचे हुए महात्माओं के रूप में अपने चमत्कार को प्रगट कर रहा है, वायु चलती है मेघ गर्जते हैं। पृथ्वी और आकाश सब में उसकी धूम है।

न बिजली में चमक और न आग के शोलों में।
कोई बतावे वह पर्दानशीं कहां बैठा है ?

जीवन एक है, जो आलसी हैं अपाहिज हैं कायर हैं इनको जीवित न जानो, वे बेजान हैं। जैसे मृतक शरीर को प्रकृति की शक्तियां अपना काम करती हुई शीघ्र ही उसके अंगों को तितर-बितर करके निगाह से छिपा देती हैं, वही दशा आलसी देश, जाति और आलसी मनुष्य की होगी। इस से कोई बचा नहीं सकता। हे जीवित ईश्वर के पूजने वालो! क्या आलस्य में पड़े हो? यदि तुम वास्तव में उस जीवित ईश्वर के पुजारी हो तो फिर तुम को जीवन क्यों नहीं प्रदान हुआ? वास्तव में हम उसी में रहते हैं। उसी में काम करते। उसी में सांस लेते हैं, जो जीवित है। जीवित ईश्वर का उपासक कभी मृतक नहीं हो सकता।

वाह्य (बाहर) और अंतरी जीवन के सम्बंध एक से हैं विचार करने वाले के लिये एक शिक्षाप्रद हैं।

जीवन क्या है? इसका उत्तर ऊपर आचुका है पर जिसने अच्छे काम किये हैं हम उसी की बाबत कहते हैं कि जीवन का लेखा वर्षों से नहीं बल्कि नेक कामों से करना चाहिये? कितने बादशाह हुये जिन्होंने वर्षों राज किया। पर क्या तुम उनको जीवित कहोगे? अमर हैं पर्म पुनीत और पवित्र आत्मा बुद्ध भगवान कि जिनकी शिक्षा की वीणा इन हजारों वर्षों में भी चुप होने में नहीं आती। जिन्दा है पवित्र जीवन महात्मा मसीह का जिन्होंने केवल सात वर्ष की आयु में ही आत्मिक विकास के

विचार संसार में फैलाये और देखो आज किस प्रकार से हजारों वर्ष बीतने पर भी वह बाढ़ के समान संसार में फैलते जारहे हैं। हम तुम्हारे मस्तिष्क को नहीं देखते तुम्हारी बुद्धि को नहीं परखते तुम्हारी विचित्र युक्ति को नहीं सुनते तुम्हारे अध्यात्म विषय की ओर से अपने कान बंद करते हैं। यदि तुम नेक हो नेकी कर रहे हो। नेक विचार धारा तुम्हारे अंतःकरण से निकल कर विश्व को शांति दे रही है, तो आओ हम तुमको अपने सिर पर बिठावेंगे तुम्हारी बंदगी करेंगे। तुम्हारी पूजा का दम भरेंगे। संसार हमको आदमी का पुजारी कहे तो कहे, कुछ परवाह नहीं। हम पतंगे के समान प्रीतम के प्रेमी हैं, ऐसी मूर्तियों के जिन के मन में परमात्मा के प्रेम की बत्ती जल रही है। हम दंडवत करते हैं ऐसे पर्म पुनीत अस्तित्व को जो उस अजर अमर से जीवन लाकर संसार को उसका भाग बांटता रहता है।

एक फारसी कविता का, कैसा मनोरम सारांश है!

"संतो का दिल ही मसजिद है वह सबके पूजने की जगह है क्योंकि ईश्वर उसी में बसता है। हजरत पैगम्बर सा० ने कहा कि "खुदा ने फरमाया, मैं आसमान और जमीन में कहीं नहीं रहता। भक्तों के दिल में बसता हूं यदि तू मुझको चाहता है तो उनके पास जाकर तलाश कर"। इसी की दृष्टि से कबीर सा० की वाणी है।

सत पुरुष की आरसी संतन ही की देह।
लखा जो चाहे अलख को इन्हीं में लख लेह।
मन मेरा पंछी भया उड़कर चला आकाश।
स्वर्ग लोक खाली पड़ा साहब संतन पास।
साध हमारी आत्मा हम साधुन के जीव।
साधुन में हम यों रहें ज्यों पै मद्धे घीव।

और यह क्यों ऐसा कहा गया है ? क्यों कृष्ण कबीर औ मौलाना रूम आदि महात्मा ऐसा कहते हैं। कारण यह है जो रात दिन भगवान के प्रेम में मग्न रहते हैं। उनकी जिन्दगी ऊपर से आती है। वह लोक की नहीं बल्कि परलोक की है, जिसका सिलसिला अटूट और अविनाशी है। यह वह मौजें हैं जो एक ओर सागर से मिली रहती हैं और दूसरी ओर औरों को खींच कर सागर से मिला देती हैं।

संतों का हाथ उस अपार महासागर से मिला हुआ है। विचार करो, सोचो समझो, तुम पृथ्वी के प्राणी हो, न चर के न अचर के। मानुषी जीवन के रहस्य को समझो। इससे लाभ उठाओ ? यह हाथ से न जाने पावे इसकी एक २ स्वाँस अति अमूल्य है। कबीर साहब की वाणी है:—

कहता हूँ कह जात हूँ कहा बजाऊं ढोल।
स्वाँसा खाली जात है तीन लोक का मोल॥
ऐसे मँहगे मोल का एक साँस जो जाइ।
चौदह लोक पटतर नहीं क्यों तू धूल मिलाय॥
नींद निशानी मौत की उठ कबीरा जाग।
और रसायन छांड़ कर तू नाम रसायन लाग॥
जाको गांठी नाम है ताकें हैं सब ऋद्धि।
कर जोड़े ठाढ़ी रहें आठ सिद्ध नौ निद्ध॥
गर दिल में रखाले नेक हो जाय।
ना काम भी कामयाब हो जाय॥
गर जात का इल्म अपने हासिल हो जाय।
ज़र्रा भी आफ़ताब हो जाय॥

———

६—सफलता की कुंजी

संसार किसकी खोज में है ? उसका अर्थ क्या है ? उसके परिश्रम की क्या आवश्यकता है ? यदि प्रश्न किसी व्यक्ति से पूछोगे तो शायद हर व्यक्ति यह ही उत्तर देगा कि सबको सुख की इच्छा है और उसी की खोज में यह सब परिश्रम, दौड़, धूप, चिंता, कथन, साधन और अभ्यास करते हैं। इसकी चिंता नहीं, पथ कितना ही अंधेरा क्यों न हो, चक्करदार हो, तंग हो पर उसका आधार सुख ही है। जीवन के सब अनुमान और ज्ञान का ध्येय सुख ही है।

सुखी होने के लिये जो मनुष्य कभी-कभी नाम लिया करता है वह सफलता है। जब हम किसी व्यक्ति के प्रयोजन को समझ लेते हैं कि सफलता से उसका क्या आशय है ? तुरंत ही हम उस भेद को जान लेते हैं जिस को पा कर वह सुखी हो जायगा।

यदि हम सैकड़ों मनुष्यों से पूंछे कि तुम्हारा सफलता से क्या अभिप्राय है तो सैकड़ों ही उत्तर मिलेंगे। अंग्रेजी कोष में बताया गया है कि उससे मनुष्य के प्रयत्नों का पूर्ण रूप में सफल होना है। और साधारण रूप में लोग इसी को सफलता कहते हैं।

पर यदि सफलता का वास्तविक रूप जानना चाहते हो तो इतना जान लो कि हम जिस काम को करना चाहते हैं उसके प्राप्त करने की शक्ति का नाम सफलता है। प्रथम हम इस बात की तनिक भी चिंता नहीं करते कि वह क्या काम करना चाहिये ? सम्भव है कि तुम्हारे दृष्टि कोण से उसकी सफलता और उसके काम करने का विचार नितांत भिन्न हो क्योंकि हर व्यक्ति को सफलता केवल उसके अपने विवेक विचार के आधीन मिलती

है। हर व्यक्ति के विचार और ध्येय भी भिन्न होंगे। कुछ लोग धन और उसके प्राप्त करने के लक्ष्य को सफलता कहते हैं। उनको संसार चाहे अनेक प्रकार की सामग्री क्यों न जुटा दे पर वह उसको ही असफलता कहेंगे। और सदा व्याकुल और चिंतित रहेंगे। सफलता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और उसका लक्ष्य किसी सर्व व्यापक तत्व को बनाना अच्छा नहीं। एक व्यक्ति ने प्रेम और प्यार को सफलता समझ रक्खा है। समभव है कि उसके पास धन हो, नेक नामी हो, मान हो, प्रतिष्ठा हो, यदि उसमें प्रेम न हो तो संसार उसके लिये अंधेरा है। क्योंकि वास्तव में उसके प्राप्त करने के काम में ही उसकी असली सफलता और मान है।

जब हम सफलता की मात्रा को मनुष्य की लगन और पुरषार्थ की तराजू में तोलते हैं तो हम इस नतीजे पर पहुँचने के लिये विवश होते हैं कि सफलता का नियम और उसकी पूर्ति, केवल व्यक्ति की विचार शक्ति और उसकी सफलता का पूर्ण रूप में पालन करना है।

सफलता की बाबत साधारण व्यक्तियों का विचार है कि वह एक ऐसी अद्भुत और सूक्ष्म वस्तु है जो केवल थोड़े भाग्यशाली पुरुषों के भाग में आती है। यह भ्रम है, मिथ्या है, भूल है। वह एक असली तत्व और प्रगट वस्तु है जिसके अस्तित्व, और होने से इन्कार करना ठीक नहीं, वह प्राणी मात्र के संग चाहे वह किसी श्रेणी का हो रहती है।

इस पर विचार करने से सहज में ही समझ में आ सकता है कि अपनी इच्छाओं की पूर्ति ही सफलता है। और आवश्यकतानुसार काम न करने की शक्ति ही असफलता है। यह प्रश्न एक प्रकार से हल होगया। अब दूसरा प्रश्न यह है कि 'क्या कारण है कि हर प्राणी को जीवन के सब उद्देश्यों में वह चीजें नहीं

मिलतीं जिसकी उनको कामना रहती है ? जब उसकी ज़रूरत होती है। और जब तक उसकी यह इच्छा रहती है ? क्या कारण है हम अपनी इच्छाशक्ति के अनुसार सफल नहीं होते ? यह एक अति महत्व का प्रश्न है ! और इसका उत्तर भी वैसा ही महत्व का होगा। उत्तर यह है :—हमारी सफलता और असफलता का आधार केवल इस बात पर है कि हम कहां तक सफल होने के नियम का पालन करते हैं।

हर प्राणी की सफलता की रचना बिल्कुल वैसी ही है जैसी मानव जीवन की रचना है। असफलता या कमी केवल इस कारण है कि हम अपने आपको, अपनी स्थिति को, नहीं समझते और न हमको यह पता है कि सर्वव्यापक ब्रह्मांडी भंडार के साथ हमने कहां तक सम्पर्क और नाता जोड़ लिया है।

सफलता हमको केवल इस कारण मिलती है कि हम उसको अपने आधीन बनाने के लिये विवश करते हैं। यदि हमने उसको विवश कर लिया तो फिर वह एक पल का भी विलम्ब नहीं करती और बिना किसी संकोच के फोरन झपट कर हम से आ मिलती है। सफल असफल होने की शक्ति हमारे अपने अन्दर है। हम सफलता प्राप्त कर लेते हैं क्योंकि हमारा विश्वास है कि हम सफलता प्राप्त कर लेंगे और उस सफलता के साधन सोचते हैं। और जब तक हम को उसके रोकने और उस से काम लेने की शक्ति, धैर्य और साहस है तब तक वह हमारी रहती है। वह हमारी होकर केवल इस कारण रहती है क्योंकि हमको विश्वास होजाता है। वह हमारी है। हम उसको अपने आधीन उस समय तक रख सकते हैं जब तक हमको विश्वास है कि हम में रोकने की शक्ति है। सुख, सफलता, धन और रुचि दायक भोग प्राप्त हो जाते हैं और केवल इस कारण हमारे अंग संग रहते हैं कि

हमने उनको अपने आधीन कर रक्खा है कि वह हमको छोड़ न सकें।

हम जो चाहें वह मिल सकता है और जिस वस्तु से हम अपनी इच्छानुसार सुख प्राप्त करना चाहते हैं वह ईश्वरी नियम के आधानी हमको मिल जाता है। ब्रह्मांडी मन, ब्रह्मांडी संकल्प शक्ति उसकी सफलता में, उसके रखने में, और उसके भोगने में, हमारे सहायक रहेंगे। जब तक कि हम अपनी उस कमाई को इस नियम के साथ रख सकें कि उस से किसी दूसरे का अहित न हो। और दूसरे प्राणी इसके कारण दुखी न हों। इस बात का ध्यान न हो कि वह चीज़ जिसको हम चाहते हैं बुरी है या भली है। इस नियम के लिये केवल इतना ही बहुत है "कि हम चाहते हैं" और वह हमको मिल रहेगी। हमारी इच्छा करना ही नियम है और हम उसको पाकर उस समय तक रख सकेंगे जब तक हम खुद उससे मुख न मोड़ लेंगे। और जान न लेंगे कि उसका इलाज खुद उस वस्तु में था।

शारीरिक जीवन वहाँ ही है जहाँ मनुष्य सफलता और खुशी के हेतु परिश्रम करते हैं। कुछ मनुष्य इन में से विशेष प्रकारसे अभागे कर्म हीन नज़र आते हैं, इनको सफलता प्राप्त नहीं होती। यदि वह सोने को हाथ लगाते हैं तो वह मिट्टी बन जाता है। देखने में वे कोशिश करते हैं, काम करते हैं। परिश्रम करते हैं पर सफलता नहीं होती। वे सदा बेकार रहते हैं। यदि काम में हाथ लगाते हैं तो वह बिगड़ जाता है। यदि वह नौकरी करते हैं तो बीमार पड़ जाते हैं। नौकरी से बरखास्त कर दिये जाते हैं। वह सदा गरीब रहते हैं। असफलता गले का हार बनजाती है। और इनके शरीर की रग-रग में असफलता ही असफलता भरी रहती है। सब संसार करीब-करीब ऐसे मनुष्यों से भरा हुआ है। जो रात दिन

भाग्य को कोसते रहते हैं। और वह सफल नहीं होते, यह संसार के भाग्य हीन मनुष्यों की बातचीत करने का ढंग है। उनको अपनी इच्छानुसार कोई चीज नहीं मिलती और वह सुख से वंचित हो कर रहते हैं। यह वे नहीं जानते कि यह सब बातें उनकी आप अपनी भूल और भ्रम का परिणाम हैं। वे यह नहीं जानते कि यदि वे दुनिया का अभय होकर सामना करें और और अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये प्रार्थना करें और जब तक इच्छा पूरी न हो जाय, कभी चैन न लें तो अवश्य ही अपना ध्येय प्राप्त कर लेंगे। उनको यह नहीं पता है कि वह किस तरह अंतर में अपने आपको ऊपर उठावें, ताकि सब लोग उनको देखें और उनका मान करें।

जो व्यक्ति बेमन के, आलस और सुस्ती से काम करता है और यह ख्याल उसके मन को कुरेदता रहता है कि मैं अभागा हूँ वह सदाँ भाग्य हीन बना रहेगा क्योंकि उसने खुद अपने आपको कर्म हीन बना रक्खा है। कोई मनुष्य आलसी आदमी से काम नहीं लेता। कार्य कुशल मनुष्य ऐसे नौकर तलाश करते हैं जो महनती हों और जिनके साहस, दृढ़ विश्वास और परिश्रम से काम पूरा होजाय। संसार का हर काम चाहता है। उसको कोई जीता जागता पुरुष हाथ लगावे। पर सोते हुए आलसी मृतकों का बाजार में कोई मोल नहीं लगाता।

काम की तलाश करने वाले और काम करने वालों में भेद होता है। अधिक लोग काम चाहते हैं पर वह यह नहीं समझते कि काम का अर्थ यह है कि वह परिश्रम करें। वह चाहते हैं कि अच्छा और हलका काम मिल जाय जिससे उनको अच्छी तनख्वाह महीने भर के बाद मिल जाया करे और उनको अधिक परिश्रम भी न करना पड़े। जिसको काम करना है वह कभी खाली

नहीं रहता। यदि वह काम की इच्छा करे तो उसको हर चीज़ मिल जायगी और वह जब तक उससे हार न मान जायगा अथवा उस काम से अधिक और श्रेष्ठ काम की योग्यता न प्राप्त कर लेगा तब तक उस काम को कर सकेगा। उसके बाद सहज में ही उसको अच्छा काम मिल जायगा वह सदा खुश रहेगा। क्योंकि उसको सदैव इच्छानुसार काम मिलेगा। और वह उसको अपने हाथ में रक्खेगा, वह जानता है जब तक मैं काम करने के योग्य हूं कोई मुझ से उसको छीन नहीं सकता। पर जो यों ही काम की तलाश में रहता है वह काम पाकर भी वे काम कर दिया जाता है। जब तक कोई हाथ में डंडा लेकर उससे काम न कराये

यदि आधी दुनिया जो हाथ पर हाथ धरे बैठी हुई अच्छे समय, अच्छे अवसर का आसरा ताकती है, इतना जान जाती! कि सफलता का भेद क्या है? और कर्मों के नियम को समझ लेती। तो उसको सहज में पता चल जाता कि संसार में केवल वह ही व्यक्ति सफल हो पाये हैं जिन्होंने अपनी योग्यता में उन्नति की। अपने आत्मा को ऊपर उठाया अथवा अपनी इच्छा को दूसरे काम के करने में लगा दिया। सफल और असफल मनुष्य में केवल इतना ही अंतर है। एक तो बाहरी सामन के साथ अपने निज रूप के सम्बंध को समझता है दूसरे को समझ नहीं है। जो व्यक्ति जानता है कि मैं सफल हो जाऊंगा वह अपने ध्येय को जान कर उससे सम्बंध स्थापित कर लेता है और हर समय समझता रहता है कि मैं सब कुछ कर सकता हूँ। वह हाथ पाँव मारता हुआ बिना किसी प्रकार के विघ्न के बिना किसी कमजोरी के, बिना किसी चिंता और संकोच के, वह ब्रह्मांड के उस भंडार को अपना केन्द्र बना लेता है जो सब के लिये हर प्रकार का सामान इकट्ठा करता है। य मनुष्य उससे माँगता है,

और इसके लिये कभी इन्कार या वाइदे का शब्द इस्तेमाल नहीं किया जाता।

हमारे भीतर एक जीती जागती शक्ति है जिसकी अपेक्षा से और सब वस्तु भरी हुई हैं, यदि हम उसको समझ लें, कि यह केन्द्र खुद हमारी सब शक्तियों का भंडार है। यहाँ ही से हम बल लेते हैं, यहाँ ही बल को जमा करते हैं। तो इस पर हम अपनी विचार शक्ति और दृढ़ प्रतिज्ञता से शासन करते हैं, हम संसार में जिस वस्तु को चाहें उसको केवल अपने प्रभाव से, अपने विचार से, अपनी चुम्बकी धार से, अपनी ओर खेंच ला सकते हैं। और जैसे चाहें, जिस रूप में चाहें उसको बदल सकते हैं। हमको केवल इतना ही निर्णय करना है कि किस प्रकार की सफलता की आवश्यकता है। हमको जीवन में किस वस्तु की इच्छा है। हमको यह भी विश्वास हो जाय कि हम उसको वास्तव में चाहते हैं। तब उस अटल भंडार का ध्यान और अनुभव करें।

साहब के दरबार में कमी वस्तु की नांह।
बन्दा मौज न पावही चूक चाकरी मांह।

प्रभु मसीह कहा करते थे "जो मेरे बाप का है वह मेरा है" और तुम भी अपने विचार के केन्द्र में, इच्छा और स्वार्थ को दृढ़ प्रत्यक्ष होकर, ब्रह्मांडी जीवन की घाटिका में हित चित्त से, अपनी सर्व शक्ति से, सब इन्द्रियों पर शासन करके, उसकी सैर करो। और सीधे उस से अपनी सफलता की आशा करो उसी घड़ी तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होने लगेगी और वह सफलता उस समय तक तुम्हारे समीप हाथ बाँधे खड़ी रहेगी जब तक तुम उसको, अथवा अपने को पतित नहीं करते या जब तक अपने को अनाधिकारी नहीं बनाते। जिसने सफलता के इस रहस्य को समझ लिया

जिसके मस्तिष्क में सफलता का यह मंत्र समा गया सफलता उसके पाँव पड़ती है। और वह अपने को ऐसे महात्मा की सेवा करने से अहो भाग्य जानती है। यह प्रकृति का अटल नियम है और बातें चाहे मिथ्या हो जाँय, पर इसमें तनिक भी संदेह नहीं। विश्वास, दृढ़ साहस, दृढ़ मन और दृढ़ प्रत्यज्ञता और इच्छा से मनुष्य क्या नहीं कर सकता ?

जिसके चित में उत्तेजना की मशाल नहीं जल रही है। जिसके मन में दृढ़ प्रत्यज्ञता का प्रकाश नहीं चमक रहा है। जिसके अन्दर धैर्य साहस और उन्नति के शिखर पर पहुँचने की लालसा नहीं है। वह कायर कभी अपनी जिभ्या पर सफलता का शब्द न लावे। सफलता उससे लजाती है, सकुचती है, उसका नाम लेने ही से उसकी बदनामी होती है। ऐसा व्यक्ति कभी किसी काम को उन्नति के शिखर पर न पहुँचा सकेगा। न इसको अधिक समय तक जारी रख सकेगा। वह कायर है, मैदान छोड़कर भाग जायगा। कसोटी से परखने पर पीठ दिखा जायगा। यह दूसरों का क्या खाक काम करेगा ? खुद काम बिगाड़ लेगा, क्योंकि उसके अन्दर वह भाव अभी पैदा नहीं हुआ, जो सफलता की डिग्री प्रदान करता है। जिसको अपने अन्तःकर्ण की शक्ति का ज्ञान हो गया वह आत्मा के दबे हुए कोषों को प्रकाश मान कर देता है। अन्धकार दूर होकर प्रकाश छा जाता है। रात की अन्धियारी जाती रहती है और सफलता का सूर्य अपने केन्द्र पर पहुंच कर अन्धेरे स्थान को जगमगा देता है।

हर मनुष्य इन दोनों अवस्थाओं में से एक या दोनों का अनुयायी बन सकता है। यदि वह उच्च श्रेणी का है और उन्नति के शिखर पर पहुँचने का अभिलाषी है और अपने भाव या विचारों को किसी बड़े ऊँचे इष्ट के केन्द्र पर सदा स्थित रखता

है तो वह उनसे भी ऊंचे उन्नति कर जायगा। वह एक स्थानी अथवा उसके बंधनमें कभी न रहेगा। यदि वह वास्तव में उस पद का हित चित्तसे अधिकारी हो! यदि वह चाहता है कि कुछ दिनों वह वहाँ और ठहरे, तो दूसरी बात है। वह वहाँ रहेगा वर्ना दिन प्रति दिन ऊंचा चढ़ता जायगा। यह ऋषि का अटल नियम है जो किताब के लेखों में नहीं लिखा जाता, बल्कि हर जगह एक-एक अणु के अंतःकर्ण में किसी महान लेखक की भूल न करने वाली कलम ने लिख रक्खा है कि "हम जैसे योग्य या पात्र बनते जाते हैं वैसे ही आगे को बढ़ते जायेंगे।" जितनी देर में हम एक बिन्दु पर स्थित होकर उसके बदलने की शक्ति प्राप्त कर लेंगे। ज्यों ही हम में ऊंचे स्थान पर चढ़ने का अधिकार आ जायगा। बाह्य जगत या बाहरी सामान हमारे बदलते जायेंगे और हम दिव्य दृष्टि होकर सार तत्व, अर्थ सिद्धि, परम प्रकाश और अपने इष्ट का दर्शन कर सकेंगे।

जब हमने इस शिक्षा को पूर्ण रूप में हृदयांकित कर लिया और अपनी शक्ति के अनुसार संसारी सम्बंध का अनुभव कर लिया, तो हम उसी घड़ी बाह्य जगत या संसारी ज्ञान के स्वामी बन जाते हैं। किसी को समर्थ्य नहीं कि हमारे समीप विरोध का दम भर सके। हम संसारी शक्तियों के स्वामी बन जाते हैं। क्यों कि हम किसी ऊंची शक्ति के बड़े अंग हैं। यह हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है कि हम आज्ञा करें और दूसरे हमारी आज्ञा का पालन करें।

यदि हम वास्तव में स्वस्थ रहने के इच्छुक हैं तो रोग हमको अपने वशीभूत न कर सकेगा। और स्वास्थ ही असली सुख और सफलता है। क्योंकि थोड़े दिव्य दृष्टि होने से अपने चारों ओर जीवन के सागर को लहरें लेते हुये देखेंगे जिस में न रोग है, न

रोग है, न पुण्य है, न पाप है। हम समझ जायेंगे रोग का सम्बंध केवल शरीर की अपेक्षा से है। और ऊंची और अपार जीवन ज्योति हमारे अंग संग रहकर हमारी वृत्तियों का रुख अपने ही समान रक्खेगी। हम उसकी ऊंची धारों के पात्र बन जायेंगे और पाप रोग और मृत्यु का भय सदा के लिये दूर हो जायगा और फिर इनमें से कोई हमारे ऊपर अधिकार न कर सकेगा।

यदि हम धन के इच्छुक हैं, यदि धन ही हमारे ध्येय या सफलता का लक्ष्य है। तो हम ब्रह्माँडी भंडार से मिल कर उस से सीधे अपने लिए रुपये पैसे अशरफियाँ ले सकेंगे। और शारीरिक कामनाओं की पूर्ति कर लेंगे। इस बात का ध्यान नहीं कि किस प्रकार की सफलता के हम इच्छुक हैं। हम उसको प्राप्त कर लेंगे क्योंकि हम प्रकृति की मांग और उसकी दैन की नीति पर विजय पालेंगे। और उसके शासक होंगे। जैसे आत्मा प्रकृति का स्वामी है। यदि हम इस शरीर के रहते हुए ही मिल रहें तो शरीर के रहते हुए इसी जीवन में पूर्ण सफलताओं को प्राप्त कर सकते हैं। यदि हमको प्रेम चाहिये तो हम अपनी दृष्टि को ऊंचा उठा कर उस प्रेम की मूर्ति का दर्शन करें। वह हमारे पास आवेगा हम से बातचीत करेगा हमसे मिलेगा।

"पाछे पाछे हरि फिरें कहत कबीर कबीर।"

पर जब हम मेल मिलाप के भाव को यथार्थ रूप से अनुभव कर लेंगे तो याद रहे शारीरिक दुख दर्द का नाम व निशान तक बाकी न रहेगा। हम बाह्य प्रेम के स्त्री और पुरुषों को अपने ही अन्दर देखेंगे। यह सब हममें हमारे अन्दर चलते फिरते होंगे। सांस लेते होंगे और सब उस सत्य लोक के रहने वाले बन जायेंगे। इस अन्तिम अवस्था में हम ईश्वर का दर्शन करेंगे जो सत है,

अविनाशी है, अनादि, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वअन्तरयामी, या हर जगह विराजमान है। यहां सुख जीवन और सफलता सब समान हैं क्योंकि वह एक है। और एक में, अनुभव में, विचार का दर्जा कहां रहता है ?

बुन्द देश त्रिलोको जानो। रचन मुरक्किब[1] यहाँ पहंचानो।
मुफरिद[2] रचना हमरे देश। सत्य सत्य यह सत्य संदेश।
एक एक में कहा विचार। जहाँ मिलोनी तहाँ विचार।

हर व्यक्ति एक समान बड़ा नहीं हो सकता, वर्न फिर इस लोक में छोटे बड़े की पहिचान असम्भव हो जाती। पर इसका हर व्यक्ति को विश्वास है कि वह इस सत को अपने हृद्यांकित करले कि "अपने अन्दर की छिपी हुई शक्ति को अधिकाँश हर मनुष्य बढ़ा सकता है।"

हर पुरुष अपने लिये ऊंचे इष्ट बाँध सकता है। और बृह्मांडी मन से मिलकर सुख चैन से धीरे धीरे अपने आपको आदर्श तक पहुंचा सकता है। यहाँ तक कि वह सबसे ऊंचे, उज्वल और सूक्षम लोक में दाखिल होकर उस अवस्था को पहुँच जायगा जो अकथ है।

मैं तू हुआ तू मैं हुआ मैं तन हुआ तू जाँ हुआ।
कोई फिर कैसे कहे ! मैं और हूं तू और है।

ऐसा होजाय ! कि आत्मा मन को आदेश देता रहे और मन आत्मा के अधिकार में आजाय। यह हमारा अपना दोष है कि हम अपने जीवन को बन्धन में डाल लेते हैं और तंग बन जाते हैं। अपनी आशाओं को अपनी इच्छाओं को और अपनी भावनाओं को छोटी-छोटी बातों के बन्धन में डाल देते हैं। यह हमारा अपना दोष है, कि हमारा काम संसारी बन्धन से बंधा

१—मिली हुई २—एक

हुआ मृतक के समान हो जाता है और हम उसी तरह काम करने लग जाते हैं जिस तरह लोग चाहते हैं कि हम काम करें। दुनिया स्वार्थी है वह चाहती है कि हमारी सफलता से उसको लाभ हो। हम कठपुतली की भाँति हर घड़ी उसकी हां में हां मिलाते रहें। यह हमारा अपना दोष है कि हम आत्मा के 'स्वतंत्र' भाव की निज बापौती को अपने हृदयांकित नहीं करते और पथ भ्रष्ट होरहे हैं। जहाँ व्यक्ति गति सफलता और स्वार्थ सिद्धि के बोल सुनाई दे रहे हैं। वह काल की पुकार है।

यदि हम कायर हैं और कायरों का सा स्वभाव रखते हैं तो न तो हम बड़े काम कर सकेंगे न सफलता के पथ पर चल सकेंगे। न अपना भला कर सकेंगे न औरों के काम आवेंगे। जिस तरह हमको ईश्वर में विश्वास है। जिस तरह हम ईश्वर की महिमा, ईश्वर की अपार शक्ति और ईश्वर की अनंन्त दया पर विश्वास रखते हैं उसी तरह हमको अपने आत्मा पर, अपने साहस, अपने उत्साह पर और अपने भुज बल पर, विश्वास रखना चाहिये। कभी न कहो समय व्यतीत होगया। कभी न कहो हम अपने में परिवर्तन नहीं कर सकते। कभी न कहो पतित दशा के बदले हम उन्नतिशील नहीं बन सकते। ऐसा कहने वाले नासमझ, आलसी, कायर और आत्म सत्ता से विमुख हैं। आत्मा पर, आत्मा की शक्ति पर, परमात्मा पर, और परमात्मा की दया पर अटल विश्वास रक्खो। तुम सब कुछ कर सकते हो, सब कुछ कर सकोगे, सब कुछ कर चुके हो, क्योंकि आत्मा ही सृष्टि का सच्चा स्वामी, सर्व शक्तिमान और सर्व श्रेष्ठ तत्व है।

सफल वा शक्तिशाली होने के लिये आवश्यकता है कि हम ऊंचे की ओर देखें, नीचे की ओर न देखें।

बने तो सतगुरु से बने नहीं बिगड़े भरपूर।
तुलसी बने जो आनते ता बनिवे पे धूर।
जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूर्ति देखी तिन तैसी।

अपनी बुद्धि व विचार ने जो विश्वास का पर्वत बनाया है उसके शिखर पर चढ़ चलो, मनुष्य के प्रयत्नों की तंग व अंधेरी गुफाओं में पाँव घसीटने से तत्काल मने कर दो। हम इस कारण प्रगट हुये हैं कि ऊँचे की ओर देखें, ऊँचे चलें, न कि हमारी दृष्टि नीचे की ओर हो और हम नीचता से अपने दूसरे भाइयों के दोषों को देखें और उनकी शान में बुरा भला कहा करें।

आओ अपने काम को साहस और संयम से करो। इस काम में सभ्यता, शोभा, चित की उदारता दिखाओ। और अपनी सब शक्ति, परिश्रम और साइस को उस इच्छा के चारों ओर लगादो। जो तुम्हारी धारणा है। और तब ब्रह्मांडी कोष से प्रार्थना करो। विश्वास रक्खो तुम कभी निराश न बनाये जाओगे और न तुम्हारा मनोरथ कभी असफल होगा।

७—सार ज्ञान या अनुभव

मनुष्य को चाहिये कि लेख व बचनों के सारांश को समझे किसी व्याख्या को कोरी कल्पित ही न माने। वरने वह सारांश से बहुत दूर चला जायगा। और कभी सत को न जान सकेगा। बात होती है कुछ लोग नासमझी से समझते हैं कुछ और यह मिथ्या समझ न केवल कर्म धर्म के कार्यों में ही खेद जनक परिणाम उत्पन्न करती है बल्कि जीवन के सब कामों में इसके कारण दोष पैदा हो जाते हैं। जैसे हमारे यहां के महात्माओं ने इस बात पर बल दिया है कि तुम अपने शारीरिक और नीच भावों पर

विजय पालो। क्योंकि जब तक शारीरिक भावों पर अधिकार न कर लोगे आत्मिक उन्नति के उभरने का अवसर न मिलेगा। यह सार है, सार था और सार रहेगा। पर नासमझों ने इस से क्या नतीजा निकाला ? उनकी दृष्टि में शरीर का नष्ट कर देना ही धर्म का नियम समझा गया। इससे अधिक नासमझी और क्या हो सकती है ? परमात्मा ने यह शरीर हमको इस लिये दिया है कि वह जीवन के परम उद्देश के प्राप्त करने में सहायक हो। बिना जीवन के इस ध्येय की प्राप्ति महा दुर्लभ है। शारीरिक स्वास्थ शारीरिक रक्षा और उसके बल की उन्नति पर ही हमारे सब भवष्य की उन्नतियों की नीव काइम होती है। इस पर हर प्रकार की मानुषी सभ्यता की इमारत बनने वाली है। इसी को नष्ट कर दिया तो आगे का ईश्वर रक्षक ! यदि शरीर स्वस्थ नहीं तो इसका स्पष्ट परिणाम यह होगा कि मन अच्छा नहीं होगा और मस्तिष्क अच्छा नहीं होगा और जहाँ मन और मस्तिष्क में दोष हुआ फिर कभी सम्भव नहीं कि मनुष्य आत्मिक स्थानों पर पहुंचने के योग्य बन सके। या देवताओं का दर्जा हासिल कर सके। इस विषय को हर व्यक्ति आप विचार कर सकता है। बेसमझों ने भूल से अपने शरीर को कांटों के समान कर लिया। इसको खाना नहीं दिया व्यर्थ की तपस्या के ध्यान से नष्ट कर लिया। कहीं हाथ को आकाश की ओर खड़ा करके सुखा लिया। कहीं लोहे की छड़ों पर जाकर सोने लगे। इन मानुषी बुद्धि विचारों को देखो ? क्या इनमें भक्ति और प्रेम की थोड़ी भी सम्भावना है ?

क्या इनमें आत्मिक भावों के प्रगट होने के चिन्ह हैं। कभी नहीं। शरीर घोड़ा है। घोड़े का काम सवारी देने का है। जिससे सवार अपनी मंजिल पार करले। पर सवार ने नादानी की, घोड़े को बिना दाना रातिब के नष्ट कर डाला।

परिणाम यह हुआ कि उसने अधबर में ही तड़प-तड़प कर जान देदी। इसके मर जाने से सवार को भी कष्ट भोगना पड़ेगा, क्योंकि प्रकृति ने समझ बूझकर इनका सम्बन्ध जोड़ा था। महात्माओं के कहने का केवल इतना आशय था कि तुम शरीर को अपने ऊपर अधिकार मत जमाने दो? तुम स्वामी बनो उसको अपने शासन में रक्खो? घोड़ा घोड़े की तरह रहे। ऐसा न हो कि अधिक बली होकर सवार को ही मार डाले। पर नासमझों ने सारांश को न समझा और आज भारत वर्ष में जप तप संयम के सम्बन्ध में लोग किस तरह भूलकर ठोकर खा रहे हैं। "शारीरिक स्वास्थ मानव उन्नति का पृथम चरण है।"

कहा गया है कि इन्द्रियों का दमन करो? पर नासमझी से इसका अर्थ भी नहीं समझा और कहा कि काम क्रोध लोभ मोह अहंकार बड़े विरोधी हैं और इनके पीछे डंडा लेकर पिल पड़े। इस भूल का भी कोई ठिकाना है? जिसमें अहंकार नहीं वह मुर्दा रहेगा। अहंकार पृथम तत्व है जो सब रचना का आधार है। यह ही हाल क्रोध का भी है। यह निजी रक्षा का सर्वोपम शस्त्र है। जिसमें क्रोध नही है, अहंकार नहीं है, न इसमें निज गौरव या self respect होगा, न अपना भला कर सकेगा न दूसरों को ही लाभ पहुंचा सकेगा। जिसमें काम, इच्छा न होगी उसमें प्रेम तपस्या और निष्काम जीवन के संस्कारों का पैदा होना महा कठिन है। यह ही हाल लोभ और मोह का भी है। शिक्षा का उद्देश केवल इतना था कि इनका यथा योग्य व्यवहार करो। इनको अपने अधिकार में रक्खो? इनको आत्मिक उन्नति में सहायक बनाओ? पर यह बात समझ में नहीं आई। डंडा लेकर इनके पीछे पिल पड़े। इनको नष्ट कर दिया खुद नष्ट हुये। "दोनों दीन से गये पांडे हलूआ मिला न मांडे।" यह तत्व वास्तव में मन

की अनेक वृत्तियां हैं। अभिप्राय यह है कि इनको केवल शिक्षा दी जाती, इनके मैल का मलीन विकार दूर कर दिया जाता, और निर्मल बना दिया जाता ताकि यह आत्माके ऊंचे और अच्छे मंडलों की चढ़ाई में सहायक सैना का काम देते। सरकस के एक तमाशा दिखाने वाले के पास हाथी, घोड़े, शेर, रीछ, भेड़िये, लोमड़ी इत्यादि पशु हैं। सब भयानक हैं। पर होश्यार तमाशा करने वाला किस प्रकार ठीक करके इनको अपनी जीविका का साधन बना लेता है।

वह कभी २ शेर और चीते से लड़ कर अपनी बुद्धिमानी का करतब औरों को दिखाया करता है। तुम्हारे शरीर, मन के बन में यह डरावने पशु पक्षी सब रहते हैं। हे मंद बुद्धियो! बन को क्यों उजाड़ते हो? फिर तुम कहाँ रहोगे? इनसे अपना काम क्यों नहीं लेते? यदि इनको मारते हो तो तुम खुद मर मिटोगे, क्योंकि यह ही सब जीवन के निसन्देह आधार हैं। महात्माओं के बचनों का तात्पर्य केवल इनके आधीन कर लेने से था। जिससे वे आज्ञा-कारी कर्मचारियों की भांति किसी चतुर स्वामी की, चढ़ाई के समय अमूल्य सेवा करते। यदि मालिक धोखे या भुलावे में आ जाता है तो वह बड़ा अज्ञानी है। यदि उनको नाश कर देता है तो बड़ा अंधा है। और अपनी मृत्यु आप बुला रहा है। चाहिये वह इन पर शासन रक्खे और इनसे काम निकाले। यह इन्द्रियों को आधीन बना लेने का आशय था। यह इन्द्रियाँ मन के अचूक शास्त्र हैं। इनको शिक्षा देने और इनको अधिकार में रखने से मन का बल बढ़ता है। "इन्द्रियों पर अधिकार करना मनुष्य की आत्मिक उन्नति और सभ्यता प्राप्त करने का दूसरा चरण है।"

कहा गया है मन को मारो? पर मन मारने के तात्पर्य को न समझ कर लोग चाहते हैं कि उनका मन पत्थर जैसा होजाय।

कुछ ने यहाँ तक भूल की है कि योग की समाधि तक को बेसुधी और न करने धरने की अवस्था ठहरा दिया। यहां तक कि एकाग्रता का भी आशय यह ही लिया जाता है। समाधी वास्तव में चित्त की लहरों की वह एकाग्रता है जो अपने अंतर में केवल आत्मिक ध्येय की ओर स्थित हो जाती है। उन्होंने क्या किया? संतोष धारण किया। शिक्षा दी। काम काज की ओर से मुख मोड़ा शुभ इच्छाओं को भी धर दबाया। अपाहिज बने औरों को भी अपाहिज बनाया। इनका मन तो चाहे मरा हो या न मरा हो, हिन्दू जाति तो इनकी भूल का शिकार हो ही गई। जिसका मन मर गया वह भला क्या दुनिया या दीन धर्म का काम करेगा। शिक्षा का उद्देश्य यह था कि मन को लेश मात्र भी बाहर मुखी न रक्खो। अंतर मुखी बनाओ। इधर से मर कर वह उधर जीवे। पर इनको तो मारने से काम था। मन की गढत उसका सुधार एकाग्रता का विचार तक न हुआ। मन को मार ही डाला। याद रक्खो जो मन को इस प्रकार मारता है वह आत्म हत्यारा है उसका दोषी है। मन को अपने ऊपर अधिकार न जमाने दो। मन पर तुम आप शासन करो, "मन की गढ़त मनुष्य की उन्नति का तीसरा चरण है।"

कहा गया है बुद्धि में कमी है। अपनी ही बुद्धि पर निर्भर रहना भूल है। इसका आशय यह कभी नहीं था कि बुद्धि निरर्थक है, व्यर्थ है। कभी नहीं। इस से श्रेष्ठ और क्या वस्तु हो सकती है? प्रार्थनायें सदा इसी की प्राप्ति के लिये हुआ करती हैं। महात्माओं की शिक्षा का तात्पर्य केवल यह था कि तुम केवल अपनी बुद्धि पर ही निर्भर न रहो? औरों के अनुभव से भी शिक्षा लो। देखो वे क्या कहते हैं। आप्त ऋषियों ने क्या सिखाया है। संतों की शिक्षा क्या है? यह सब पुकार-पुकार कर

कह गये "बुद्धि को परमात्मा के आधीन बनाओ ?" बुद्धि, इसमें संशय नहीं, निश्चय आत्मिक यानी यकीन दिलाने वाली बनाई गई है, पर वह आधीन किसी और प्रकाश की भी है। जिस प्रकार तुम शरीर को मन के आधीन बनाते हो उसी प्रकार तुम बुद्धि को परमात्मा के आधीन बनाओ। बुद्धि के पीछे डंडा लेकर मत फिरो। बुद्धि ही सब कुछ है बुद्धि से बढ़ कर और कोई वस्तु नहीं है। इसी से सत और असत का निर्णय होता है। इसी की सहायता से परम पद की प्राप्ति होती है। यह ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है। यदि यह नहीं है तो कुछ नहीं है। "बुद्धि मनुष्य की उन्नति का चौथा चरण है।"

ऊपर हमने केवल धार्मिक विषयों की भूल को दिखाया है। पर मनुष्य की भूलों की यहाँ ही तक सीमा नहीं है। वह अधिकांश पग-पग पर हर विषय में धोखा खाता रहता है। अब थोड़ा स्वास्थ के विषय में देखिये। आशय के समझने में कैसी भूल की जाती है।

कहा गया है कि पानी के पीने में सावधानी रक्खो। तर्क कुतर्क करते हैं। कोई कहता है नल का पानी पीओ। किसी का मत है नदी का पानी पीओ। कोई कूये के पानी की राय देता है, चौथा कहता है कि उबाल कर पानी पीओ। पाँचवा व्यक्ति कहता है कि बिना निथारे हुए पानी न पीओ। यदि यहाँ ही तक बातचीत होती तब भी संतोष होता पर इसके पश्चात् छटा व्यक्ति एक निराली युक्ति निकालता और कहता है कि यदि तुम उबाला हुआ जल पीते हो तो मानो मरे हुए जानवरों का रस पी रहे हो। क्योंकि उबालने से पानी के सब कीड़े मर जाते हैं। यदि हम ताजा जल पीते हैं तो सातवाँ मनुष्य कहता है कि तुम कीड़ों को पी रहे हो। क्योंकि पानी में बहुत कीड़े रहते हैं। विश्वास न हो

तो खुर्दबीन (एक छोटी चीज को बड़ा दिखाने का यन्त्र है) लेकर देखलो। हे ईश्वर ! हम पानी भी पीयें या नहीं। जब से जापानियों के रहन सहन का पता लगा है लोग कहते हैं पानी खूब पीया करो, बार २ पीजिये क्योंकि जापानियों के शक्तिशाली शरीर बनने का असली कारण अधिक मात्रा में पानी पीना है। हम एक पंडित साहब के यहां दावत में गये थे। उन्होंने राय दी कि भोजन के समय बराबर पानी पीते रहो। इस दावत में हमारे एक मित्र जो हकीम भी थे कहने लगे मैं जब तक पेट भर खाना नहीं खा लेता पानी नहीं पीता। यहाँ तक कि हजार मुख और हजार बातें कोई किसकी सुने और किसकी मानें हर व्यक्ति अपने सुभाव के अनुकूल इसका निर्णय कर सकता है। केवल इतने ही विचार की आवश्यकता है कि पानी साफ पीओ। इतना पीओ जितनी आवश्यकता हो। मैंने तो पानी को अमृत लिए औषधि समझ रक्खा है। जब सिर में दर्द हुआ, हाजमे में खराबी हुई। पानी खूब पी लिया। और दोष दूर हो गया।

भोजन के विषय में भी यह ही बात है। कोई कहता है कुछ खाओ कोई कुछ। इसमें भी आवश्यकता है कि मनुष्य अपनी बुद्धि से काम ले। खाना स्वच्छ हो, सुभाव के अनुकूल इसमें स्वादिष्ट सामान रहें। सादा हो कब्ज न करे, न अधिक खाओ न कम अपनी भूख के अनुसार खाओ। भूख बता देती है कि क्या खाना चाहिये और कितना खाना चाहिये। जब तुम्हारे शरीर में मिठाई या खटाई की कमी हो जाती है तब मन में आप ही उसके खाने की रुचि पैदा होती है। इसका अनुभव रोग की अवस्था में अच्छा किया जा सकता है, जो मन चाहे खाओ पर उसको बुरी तरह मतखाओ ! अधिक खाजाने के दोषी मत बनो। जो आत्मिक साधन करने वाले हैं वह स्वयं अपने लिए नियम बना लेंगे। पर

यहाँ इतना हम अपनी ओर से कहे देते हैं कि जिस चीज से अरुचि हो उस से बचो। जैसे शराब तुम्हारे जीवन के लिए हानिकारक है। इसकी आदत तुमने खुद डाल ली है। इसको दबा दो और दूसरी नशीली हानिकारक चीजों को त्यागो? इससे तुम्हारा स्वास्थ ठीक रहेगा।

इसी प्रकार पहनाव, उढ़ाव, भोजन समाज का व्यवहार, संसारी काम धन्धों के विषय में ऐसे ही साधनों से काम लिया जाता है जिसकी सीमा नहीं हमने केवल थोड़े उदाहरण दिये हैं। इनसे तुम हमारे आशय को समझ सकते हो? धार्मिक मामलों में और आत्मिक उन्नति के विषय में अत्यंत भ्रम फैला हुआ है। जिससे जाति की हानि हो रही है। चाहिये मनुष्य सारको समझे। शब्दों के गोरख धन्धे में न फंसे। शब्दों के परदे में जो अर्थ दिया हुआ है उसको समझ कर बुद्धि से काम ले। वह भय और कष्ट से बच जायगा।

८—विचार और उसकी शक्ति

जो मनुष्य विचार को कोरा कल्पित समझते हैं वह अपनी नासमझी का खुद सबूत दे रहे हैं। विचार चाहे वह किसी प्रकार का हो अपना विशेष प्रकार का प्रभाव रखता है। महात्माओं ने इस विचार को महान शक्ति समझा था। केवल इतना ही नहीं बल्कि संसार में जितने काम होते हैं इन सब की जड़ में विचार ही रहता है। काम भी तीन प्रकार के बताये गये हैं एक वह जो मन में पैदा होता है। दूसरा वह जो वाणी द्वारा प्रगट किया जाता है। तीसरा वह जो हाथ से किया जाता है। कहा जाता है कि तुम मन बचन और कर्म से शुद्ध रहो। और वास्तव

में जो मन बचन और कर्म की अपेक्षा से शुद्ध नहीं होता है उसको कोई शुद्ध नहीं कह सकता। यह तीनों कर्म कहलाते हैं। कहने के लिये तो इन तीनों के तीन भिन्न-भिन्न रूप हैं और तीन प्रकार के हैं पर यदि मन के अन्दर घुसकर देखा जाय तो यह तीन भिन्न कर्म नहीं हैं। कर्म एक है। केवल तीन भिन्न-भिन्न स्थान भेद से तीन प्रकार का माना जाता है।

जैसे एक मनुष्य किसी का बुरा चाहता है प्रथम उसके मन में विरोधी व्यक्ति के प्रति बुरा विचार पैदा होता है, फिर इसी विचार की लहरें जिभ्या पर आती हैं और वह बुरा कहने लगता है। फिर जब वह लहर हाथों में कर्म करती है कर्म का नाम पाती है।

पर मनुष्य को इतना और विचार करना चाहिये कि यह नितांत आवश्यक नहीं है कि विचार की लहरें पैदा होकर व्यर्थ बाहरी दो चरणों में अपने को प्रगट करें, यह एक ही वस्तु होते हुये भी अपने-अपने चरणों में विशेष प्रकार के रूपों में कर्म करते हैं। यह सत्य है कि विचार मन में फुरता है, पर यह जरूरी नहीं है कि व्यर्थ उसके प्रगट होने के लिये वाणी या हाथ की सदा जरूरत हुआ करे। विचार स्वयं मन में रहकर विचित्र ढंग से कर्म करता है। यहाँ इसकी शक्ति सूक्ष्म होती है और हर बुद्धिमान समझ सकता है कि सूक्ष्म वस्तु स्थूल की अपेक्षा अति प्रभावशाली, अधिक जीवन-प्रदान करने वाली और अधिक उत्साह जनक होती है। मन में रहकर मन से सूक्ष्म प्रमाणुओं के रूप में निकल कर अन्दर से बाहर तक एक विशेष प्रकार की धार बनकर मानसिक चमत्कार दिखा सकती है।

धार्मिक पुस्तकों ने इस बात पर बड़े विस्तार के साथ उल्लेख किया है कि किसी मनुष्य का जी न दुखाया जाय। पारसी सूफियों ने भी उसके महत्व पर बड़ा बल दिया है और बड़े-बड़े संत महा-

त्माओं ने पुकार-पुकार कर कहा है कि इसको समझो कि मन में ईश्वर बसता है। उसको मत दुखाओ। महाभारत में भीष्म पितामह ने विशेष प्रकार से युधिष्ठिर महाराज से कहा है कि कभी भी गरीब से गरीब प्रजा का दिल न दुखाया जाय क्योंकि:—

तुलसी आह गरीब की हरि सों सही न जाय।
मुई खाल के सांस ते लोह भस्म होजाय।

एक फारसी भाषा के कवि के वचन का सारांश यह है:— "कि सताये हुये की आह मालिक के तख्त को हिला देती हैं और वह साथ ही दौड़ा चला आता है।

जब मनुष्य किसी को सताता है, जो सताये हुये के दिल से द्विचताई के विचार निकलते हैं और क्योंकि वह वाणी से और हाथ से बदला नहीं ले सकता है। मन ही मन बार-बार दुख प्रतीत करता है और शत्रु का बुरा चाहने से उसके विचार की धारें निकल कर उसको मार देती हैं। इससे प्रगट है कि कमजोर मनुष्य भी अपने विचारों के बार-बार सोचने से ताकतवर मनुष्य को दबा सकता है। केवल यह देखना चाहिये कि इसके विचारों में घनी दृढ़ता कहाँ तक है। कहाँ तक उसने इसका अनुभव कर लिया है और वह अभी तक इस योग्य बना है कि नहीं कि वह विचारों की धार को शत्रु तक पहुँचा सके। यह शक्ति सीखने या विद्या प्राप्त करने से आती है और कभी-कभी आप ही पैदा हो जाती है। हिन्दू धर्म के तांत्रिक काल में जब मंत्र यंत्र और तंत्र पर लोग अधिक विश्वास करते थे। विचारों की शक्ति से जानकार हो चले थे। पर मन और मस्तिष्क का सुधार न होने के कारण वह अपने साधन में कुछ मिथ्या और व्यर्थ के विश्वास शामिल रखते थे। जिसके कारण विद्या का अन्त होगया। मारन उच्चाटन वशीकरण आदि के मन्त्र कुछ मनुष्यों ने सुने होंगे। यह क्या

है ? यह केवल विचारों के सुधार और कायदे में लाने वाले साधन हैं। आप देखते हैं, जिस समय हम किसी कविता को एक विशेष मधुर सुर में सुनते हैं समाधि लगने लगती है। हम जब खुद किसी प्रभावशाली वाणी को एक विशेष मनोरम ढंग से पढ़ते हैं तब भी वही दशा होती है। हम में मस्ती और बेसुधी आजाती है। तांत्रिकों के मंत्रों का भी यह ही हाल है। उनके अटपटे और बिना अर्थ के शब्दों में एक शक्ति होती है और जब बार-बार उसी ढंग में पढ़ते हुये विचार की लहर को दूर भेजते हैं तो जो विचार भेजने वाले का उद्देश्य होता है वह पूरा हो जाता है। यदि वह चाहता है कि शत्रु मर जाय तो मर जाता है यदि वह चाहता है कि उसका मन उचट जाय तो उसका मन उचट जाता है। यदि वह चाहता है कि उसका मन बस में आ जाय तो वह महरबान होजाता है। यह मारन उच्चाटन और वशीकरण का भेद है। विचार जब बार-बार सोचे जाते हैं तो उनमें बल और शक्ति उत्पन्न होती है। और अपनी शक्ति और बल के अनुसार परिणाम दिखाये बिना नहीं रहते।

कभी २ देखा गया है कि कुछ निर्दयता के साथ राज करने वाले राजा सहज में ही अपनी प्रजा के विषम विचारों के हमले के कारण अकाल मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। इसको अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं। अपने चारों ओर ध्यान करके और समय के हालात पर दृष्टि डालने से इस प्रकार की घटना सहज में समझ में आसकती है। एक स्वस्थ और शक्तिमान हाकिम आता है। वह अन समझ और अपना कठोर स्वभाव होने के कारण व्यर्थ सताने लगता है। किसी को देश निकाला देता है किसी को बन्दी बना देता है, सब प्रजा व्याकुल हो जाती है। परिणाम क्या होता है ? चूंकि सताते सताते उसका मन धीरे

धीरे शक्तिहीन हो जाता है, महान दुख से पीड़ित प्रजा की आहों की धारें उस पर आक्रमण कर देती हैं। दीन दुखी और तो कुछ कर नहीं सकते मन ही मन में अकुलाते रहते हैं। इनकी व्याकुलता की हृदय वेधक धारें बराबर निर्दई के हृदय से जाकर टकरातीं रहती हैं और वह बीमार हो जाता है। रात को नींद नहीं आती। डाक्टर पर डाक्टर बुलाये जाते हैं दवाओं पर दवायें पिलाई जाती हैं, पर सब व्यर्थ।

"मरीजे इश्क पर रहमत खुदा की, मर्ज बढ़ता गया ज्यों २ दवा की।"

सब लोग चकित रह जाते हैं। रहस्य समझ में नहीं आता अभी पन्द्रह दिन पहले यह भला चंगा था अब क्या हो गया। "भला चंगा गिरफ्तारे बला क्योंकर हुआ।"

अन्त में वह निर्दई तड़प २ कर अत्यंत कष्ट और यातना सहता हुआ जान देता है। जो मनुष्य असलियत को समझते हैं उनको मूल कारण के जानने में कठिनाई नहीं होती। जो नहीं जानते अनेक प्रकार की बातें गढ़ते हैं।

विचार अति विषम और मारने वाले शस्त्र हैं, जो अति दीन दुखी प्रजा अपने राजा के प्रति चलाती है। विशेषतः रूस देश में इस प्रकार बहुत से अधर्मी मनुष्य प्रजा के विचारों के शिकार बनते हैं। प्राचीन आर्यवृत में मनुष्य विचार शक्ति को बहुत कुछ समझते थे। और यही कारण है कि शासक वर्ग बड़े सोच समझ कर अपने धर्म को विचार कर और उसको निजी सम्बन्ध से अलग रख कर निष्काम, होकर, अपने सेवा भाव का पालन करते थे। इस प्रकार के शासक इस भय से बचे रहते थे। और उन पर विचार शक्ति का प्रभाव नहीं पड़ सकता, क्योंकि राज्य की बाग-डोर हाथ में रखते हुए एक प्रकार की तपस्या करते रहते थे। ऐसा परम पुनीत और पवित्र उदाहरण कृष्ण भगवान का है। जिस

प्रकार विचार में मारने की शक्ति है। उसी प्रकार जीवित रखने की भी शक्ति है। यदि आप किसी पुरुष को बार बार आशीर्वाद देते रहें, उसके मन को सुख मिलता है। आशीर्वाद भी एक तरह पर विचार की लहर है! कहानी है हिमायूँ बादशाह बहुत बीमार पड़ गया। ज़हीदउद्दीन बाबर उसका पिता था। अति चिन्तित हुआ। उसने हुमायूँ के बिस्तर के निकट सात बार परिक्रमा दी ईश्वा की और अंतःकर्ण से प्रार्थना की कि हे मालिक! यह बच जाय और मैं मर जाऊँ! परिणाम यह हुआ कि हुमायूँ उसी दिन से अच्छा होने लगा और बाबर बीमार पड़ गया और मर गया। बात क्या हुई? बाबर के आरोग्य प्रद विचार हुमायूँ के मन में बस गये, और उसके रोग के विचार उसमें चले गये।

राजा भोज अपने समय का अति चतुर और न्यायी राजा था। सब प्रजा उसकी हितचिंत से सराहना करती थी। वह राज काज से बड़ा सुखी रहता था। वह एक बुड्ढी दुकानदार स्त्री की दुकान के सामने से जाता उसको महान दुख प्रतीत होता और जब उस स्त्री को देखता तो भय के कारण कांप जाता था। कई दिन उसने इस बात पर विचार किया। कोई बात समझ में न आई। अंत को उसने अपने मंत्री से कहा। मंत्री ने जाँच करना शुरू किया। तो पता लगा कि एक बुढ़िया ने कई मन चंदन की लकड़ी इकट्ठी कर रक्खी हैं। वह बिकती नहीं। उसके मन में यह विचार रहता है कि जब राजा भोज मरेगा यह लकड़ी उसकी चिता जलाने को मोल लेली जावेंगी। और वह रात दिन दुआ करती थी कि राजा मर जाय। और क्योंकि उसके विचार की धारें राजा के मन से टकराती थीं इसलिये उसको दुख होता था। चतुर और स्याने मंत्री ने वह लकड़ी मोल लेलीं और बूढ़ी से कहा माई राजा के अधिक जीवन की दुआ माँगा कर। वह हंसी और

उसका विचार जाता रहा। चिंता दूर हुई। और फिर जब राजा उसकी दुकान के पास होकर जाता तो मारने वाली लहरों के विपरीत अब जीवन की लहरें आने लगीं।

जब मनुष्य बीमार हो तो तुम सुख और स्वस्थ होने के विचार को सच्चे हित चित और प्रेम के साथ उसको अच्छे होने का विश्वास दिलाते रहो। तुम्हारे स्वस्थ करने वाले विचार उसको शीघ्र ही स्वस्थ कर देंगे।

यदि यह चाहते हो कि तुम्हारे चारों ओर जीवन पैदा हो तो जीवन के सम्बन्ध में अपने विचारों को अपने चारों ओर फैलाने की कोशिश करो। समय बदल जायगा। यह एक रहस्य है जो हर व्यक्ति को अपने हृदयांकित करना उचित है।

परम संत कबीर साहब ने अपनी साखी में एक अति अमूल्य दोहा लिख रक्खा है जो मोतियों से तोले जाने योग्य है:—

मन गोरख मन गोविन्दा मन ही औगढ होय।
जो मन राखै यत्न कर मन ही करता होय।

भाव यह है कि मन ही सब कुछ है यदि कोई इस को अधिकार में रखने का भेद जानता है तो यह मन ही स्वामी हो सकता है।

कम बुद्धि वालों को इसमें अद्वैत वाद की शिक्षा मिलेगी। पर यह मिथ्या है। कबीर सा० द्वैत वादी थे उनके कथन का सार कुछ और है। उनका भाव यह है कि मनुष्य जो कुछ सोचता है वह वैसा ही हो जाता है। यहां तक कि पैदा करने वाले तक के गुण इसमें आजाते हैं। ईश्वर के विराट रूप का तीन रूपों में वर्णन किया गया है। ब्रह्मा विष्णु महेश। ब्रह्मा उत्पत्ति, विष्णु पालन करने वाले कायम रखने वाले नियम में रखने वाले। महेश नष्ट करने वाले हैं। पुरुष एक है उसके तीन गुण को कवियों के

अलंकार में अलग-अलग करके दिखाने का यत्न किया गया है। यह तीनों गुण मनुष्य में भी उत्पन्न हो सकते हैं। और उनके उत्पन्न करने वाले केवल उसके विचार हैं और कोई नहीं है।

जैसे मनुष्य जिस समय किसी विचार का मनन करता है वह उसका उत्पन्न करने वाला है, मनन करने के साथ ही उसकी उत्पत्ति के साधन भी पैदा हो जाते हैं। यह काम ब्रह्मा का है और इन सबको काम में लाकर जब वह अपने मनोरथ के चलाने में व्यस्त होता है, वह उसका पालने वाला, नियम में रखने वाला और ढंग में चलाने वाला विष्णु है, जब वह प्रकृति के परिवर्तन के नियम के आधीन अनावश्यक हो जाते हैं वह इनको बदल देता है, यह शिव का काम है।

संसार का काम इसी प्रकार चलता है। मनुष्य एक काम को सोच-कर निकालता है, उससे काम लेता है, फिर उसको समयानुसार बदल देता है, क्योंकि सवेरे से शाम तक शाम से रात तक दुनियाँ पलटा खाती रहती है। परिवर्तन प्रकृति की जान है। बुद्धि बदलती है शरीर बदलता है। धर्म नये २ रूप धारण किया करता है। सबका नया जन्म हुआ करता है। इससे बचाव नहीं। इसलिए जो बुद्धि-मान हैं समय के साथ बदलते हुए अपना काम निकालते रहते हैं। जो पुराने विचारों को लिये रहते हैं वह धोखा खाते हैं। जो आज है, कल न रहेगा। जो कल होगा वह परसों न रहेगा। इसलिये उन्नति के इच्छुक उन साधनों को तलाश करते हैं, उनसे काम लेते हैं, उनमें परिवर्तन करते रहते हैं। जो उनके हित और जीवन को स्थित रखने के लिये आवश्यक हैं। जिस मनुष्य में यह गुण न हों वह मृतक है। जिस जाति में यह बात न पाई जाय उसका अन्त समय निकट समझो ?

हम सब ईश्वर के पुत्र हैं। हम में और उसमें अंतर है। वह

बुद्धि) साथ-साथ चलते हैं। यह सब प्राकृतिक दृष्टि से मिले जुले रहते हैं। भोर से लेकर सायंकाल तक हिन्दुओं के काम काज लगभग सब अध्यात्म और धार्मिक सांचे में ढले रहते थे। पर अब समय आया उनकी विवेक बुद्धि जाती रही। सार का स्थान असार ने ले लिया। और सब जाति की जाति का विध्वंस होगया। आवश्यकता है उनको धर्म के अन्तर्गत सार तत्व का भी बोध कराया जाय जिससे वह धर्म के सारांश को भले प्रकार समझ कर अपने को उसके अनुसार ढाल सकें और उनमें शक्ति व बल आजाय। धर्म किसी व्यर्थ या निकृष्ट नियम के पालन करने का नाम नहीं है। बल्कि यह बड़ी भारी सचाई है और जिस व्यक्ति को इस सत्य के समझने की आवश्यकता हो वह हिन्दुओं के धर्म को अच्छी तरह से अध्ययन करे।

हिन्दू धर्म की शिक्षा है 'सत्य' शक्ति है 'सत्य' धर्म है 'सत्य' रक्षक है। हिन्दू धर्म बताता है, प्रेम, भक्ति, विश्वास और श्रद्धा यह सब परम महत्व के भाव हैं। और जब कभी यह मनुष्य में प्रगट होजाते हैं फिर कोई शक्ति इसका विरोध नही करती। हिन्दू धर्म सदा हजारों और लाखों वर्ष से शिक्षा देते आरहा है कि हम सब एक ऐसे नित्य और अविनाशी सत्ता के अंश हैं जो जीवन मरण रहित है, अपार है, अनन्त है, सर्व व्यापक है, अमर है आदि-आदि। जब मनुष्य को उसका अनुभव हो जाता है मृत्यु के भय से वंचित होकर, अविनाशी अनादि जीवन की गोद में विश्राम लेता है। और हर प्रकार के भय और चिंताओं से मुक्ति पा जाता है। कौन बेसमझ इस बात से मचे कर सकता है कि हम ब्रह्मांडी जीवन की जंजीर की निरंतर कड़ियाँ नहीं हैं। यह सत्य है हममें हमारा अस्तित्व और व्यक्तित्व है। पर हैं हम उस अनादि और अविनाशी सम्बन्ध के विचित्र अंश वंश! और

कभी उससे पृथक नहीं हो सकते। जिस समय मनुष्य ऐसा समझले या अनुभव करले फिर वह अपार सर्व व्यापक और अनन्त जीवन का सच्चा पुत्र या उत्तराधिकारी बन कर उस अटल नियम के ऊपर आजाता है। और स्वयं अटल नियम जैसा ही बन जाता है और प्रकृति की सब शक्तियाँ आप ही आप आगे हाथ बाँध कर उसके सामने खड़ी रहती हैं। यह हिन्दू धर्म की सर्वोपरि और सर्वोत्तम शिक्षा है। जिसके सत्य होने का संसार कुछ समय पश्चात् अनुभव करेगा और मानेगा। और हमको जो हिन्दू हैं, चाहिये कि शब्दों के गोरख धंधे में न फंसते हुये शिक्षा के सारांश और सार तत्व को समझने का भरसक प्रयत्न करें और शक्तिशाली व जीवित रहने का यत्न करें।

शक्ति के संचार पैदा होने का भेद क्या है? इसके अनेक और भिन्न २ उत्तर दिये जा सकते हैं। कोई व्यक्ति कहता है व्यायाम करो शक्ति आवेगी। कोई कहता है धैर्य और संयम से काम लो? शक्ति आवेगी। कोई कहता है विद्या और साधन स्वयं दोनों शक्ति हैं। चौथा व्यक्ति कहता है योगाभ्यास और सोच विचार के साधन में शक्ति है। यह सब सत्य हैं। लेशमात्र भी शंका नहीं। पर यह उस प्रश्न के असली व स्वाभाविक उत्तर कहां तक हैं, साधारण बुद्धि का मनुष्य आप स्वयं समझ सकता है। चित्त की एकाग्रता, स्थिर होना असली शक्ति है और इस कारण इनमें से अधिकतर बातें साधन और उसके उपाय कहे जा सकते हैं। और सबके सब अपनी २ विशेषता रखते हुए आवश्यक और उपयोगी हैं। क्या आप नहीं देखते जहाँ विशेष प्रकार की प्रकृति की धारें एक स्थान पर एकत्र हो जाती हैं वहीं शक्ति प्रगट हो जाती है। बिजली की धारों को एकत्र होने दो वहाँ स्वयं प्रकाश, गर्मी, और जीवन प्रगट हो जायगा। सारे विश्व में यह सर्व

व्यापक नियम काम करता हुआ दृष्टि में आवेगा। सूर्य क्या है? वह भी जीवन, ज़िंदगी की विचित्रताओं का भंडार है। चन्द्रमा क्या है? वह प्रकाश का कोश है। और यह ही हाल सब स्थूल जगत का है। हमारे अपने शरीर में देखो? पेट भंडार है भोजन सामग्री और खून आदि का, मस्तिष्क भंडार है विचारों का। मन संकल्प विकल्प का। मनुष्य शरीर के सब ऊंचे और नीचे कोष जिनका योगियों ने कमल या चक्र के नाम से वर्णन किया है, यह आप स्वयं विशेष प्रकार की योग्ताओं के भंडार हैं, और जिस समय मनुष्य को उनके सम्पर्क में आने अथवा उनको छेड़ने और हरकत में लाने, काम लेने का भेद मालूम हो जाता है इनसे विशेष प्रकार की शक्तियों की धार प्रगट हो जाती है। और उसके पैदा होते ही पराक्रम के दृश्य दृष्टि में आने लगते हैं। जिनको आजकल जीवन, "जीव" के शब्दों से ठीक २ पुकारा जाता है।

जब पानी को हौज में भर देते हैं अथवा बहते हुये सोते को रोक लगा देते हैं कि वह अपने जल के बहाव को एक स्थान पर रोक दे। आटा पीसने की चक्की चलने लगती है, क्योंकि एकत्र की हुई शक्ति जल के रूप में काम करने लग जाती है। हम बालपन में पतंग उड़ाया करते थे। पतंग क्यों उड़ती है? क्योंकि दो शक्तियां मिलकर काम कर रही हैं। एक तो हमारे अन्तर की एकत्रित शक्ति जो मन की आंख को और हाथ को हरकत दे रही है। दूसरे बाहर की वायु। रेल क्यों चलती है? क्योंकि उसके इंजन में भाप इकट्ठा होकर शक्ति बन जाती है। इसी प्रकार गैस के हौज और बिजली के डायनुमों का हाल समझो। क्या यह झूंठ है? कभी नहीं। अब ऐसे ही अपने विशेष विचार के सम्बन्ध में विचार करो? हमने अनेक प्रकार से विचार शक्ति के महत्व को समझाने का यत्न किया है। साधू रिसाले में भी बहुत कुछ लिखा है। उदा

हरण देदे कर भिन्न २ शब्दों के प्रयोग से अनुमान और प्रमाण से विविध उपायों से समझाना चाहा है कि विचार विश्वमें अपना विशेष प्रभाव रखता है। विचार स्वयं एक प्रकार की असीम और अनन्त शक्ति है जो हजारों लाखों और करोड़ों मील की दूरी पर दम के दम में चली जाती है। न बिजली में इसकी सी तेजी है न वायु में इसके समान शक्ति है। जब हम इस विचार के चमत्कार पर ध्यान करते हैं, चकित रह जाते हैं! और चौंक कर अपने, निज स्वरूप के लिये जिह्वा से स्वयं पुकार उठते हैं।

अर्थात:—हे आत्मा! तेरा रूप खुद दुनिया के तमाशो की जगह है तू कहां तमाशा देखने जाता है!

मेरे प्यारे पढ़ने वालो! तुम बिजली हो! तुम वायु हो! तुम सब कुछ हो! यहाँ भी वही अटल नियम काम करता हुआ दिखाई देता है। विचार की धारें इकट्ठी होकर जमा होती हैं और फिर एक ओर को ध्यान करते हुये विचित्र और अद्भुत शक्ति का चमत्कार बन जाती हैं। योगी या सिद्धि शक्ति के साधक क्या करते हैं? चित्त की वृत्तियों का निरोध करते हैं। चित्त की वृत्तियों का निरोध क्या है? मन के विचार जो बार २ बाहर जाते हैं। इनका रोकना "निरोध" है। और जब यह (पूर्णता) सिद्धि प्राप्त होगई। 'संयम' का साधन करने से वह सूर्य का, तारों का, रचना का, अपने निज सरूप का और परमात्मा की सत्ता का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। संयम क्या है? जमा की हुई चित्त की वृत्तियों का एक ओर किसी विशेष दिशा में भेजना और उस से टकरा कर एक हो जाना "संयम" है। यह "संयम" केवल समाधि लगाने वाले कर सकते हैं। समाधि क्या है? जब चित्त की वृत्तियों का निरोध होकर वह एक केन्द्र पर ठहर जाती हैं और बाहरी संसार की ओर से बे सुधी होती है वही "समाधि"

है। आप समाधि को समझे कि नहीं? समाधि में उसी प्रकार चित्त की वृत्तियां लग जाती हैं जैसे जल की धारें अनेक दिशाओं से आकर हौज़ में इकट्ठी हो जाती हैं। एक जगह जमा हो जाने पर पानी ताक़तवर बन जाता है। उसी तरह विचार इकट्ठे होकर महान शक्ति के रूप में बदल जाते हैं और जब किसी विशेष दिशा की ओर उनका रुख़ कर दिया जाता है वह अपने अस्तित्व (हस्ती) निजरूप को प्रगट कराये बिना नहीं रहते। यहाँ तक कि जब वह बिजली के समान अपना उग्र रूप धारण करके ऊपर की ओर फर २ उड़ने लगते हैं तो वह उस सर्व व्यापक सर्व शक्तिमान के सिंहासन से जा टकराते हैं। उससे और उसमें मिलने के अधिकारी बन जाते हैं। जो कुछ है विचार (ख्याल) है!

सम्भव है आप ऊपर के उदाहरण को भलें प्रकार न समझे हों। आइये एक साधारण घटना से आपको इस गुप्त रहस्य के भेद को प्रगट करने का यत्न करें मान लीजिये? आपके मन में भोर में जल्दी उठने का विचार उत्पन्न हो गया है। यह विचार क्या करता है। आपको ठीक नियत समय पर जगा देता है। सूर्य की किरणें संसार को प्रकाश करने को चलीं। इधर आपके विचार ने उसी समय आपके मन में विशेष प्रकार की हल चल करके जगा दिया। आप आँखें मलते हुये जग उठे। आप फिर कहते हैं कि थोड़ी देर और सोलें। पर क्या आप उस घड़ी सो जाते हैं? थोड़े से मन के परदों में घुस कर देखिये तो सही वहाँ क्या तमाशा होरहा है? अन्दर ही अन्दर यह मन जी महाराज स्वयं समझा रहे हैं कि उठना चाहिये? और आप इस अनुभव से बच नहीं सकते। विवश होकर उठ खड़े होते हैं। ऐसा क्यों होता है? कौन सी शक्ति आपको जगा देती है? वह स्वयं आप का विचार है। हे मेरे प्यारे पाठको! खूब समझ लो तुम आत्मा

हो। तुम जीवन हो। व्यक्तिगत जीवन सदा किसी न किसी विशेष रूप की ओर मुड़ जाता है। और मोड़ने वाली शक्ति स्वयं तुम्हारा अपना विचार है। रात के समय सोने से पहले थोड़ा अपने मन को कह दो! बारह बज कर पन्द्रह मिनट पर जगा देना और ठीक उसी समय पर तुम्हारा नाम लेकर कोई व्यक्ति जगा देगा। यह विचार ही था जो तुम्हारे मन के उस विशेष घाट पर जो रजागुणी मन कहलाता है धीरे-धीरे इकट्ठा होता गया। और समय पर एक आश्चर्यजनक तमाशा दिखा दिया। आपने सुन रक्खा होगा विष्णु तप से सृष्टि का पालन करते हैं। ब्रह्मा तप से सृष्टि को पैदा करते हैं। शिव तप से सृष्टि का संहार करते हैं। यह तप और कुछ नहीं है। विचार की सब शक्तियों का एकत्र होकर विशेष दिशा में लग जाने का नाम "तप" है। विष्णु ब्रह्मा और शिव की शक्ति केवल उनका विचार है।

भिन्न-भिन्न धर्म वाले उनके लिये चाहे जो शब्द गढ़लें इससे हानि नहीं। पर हम जिस घाट पर बैठ कर तुमको समझा रहे हैं उसके लिये विचार से अधिक उत्तम शब्द कोई नहीं है। इसको पूरे तौर पर समझ लो। जब तक विचार इकट्ठा होकर एक जगह जमा नहीं हो लेता, और जब तक इकट्ठा होकर एक दिशा की ओर नहीं चलता, तब तक जीवन के कोई आश्चर्यजनक कर्म और दृश्य इस जगत में नहीं घटते। ऊपर के उदाहरण से तुम समझ गये होगे कि एक विशेष विचार की धार भीतर ही भीतर सिमिट-सिमिट कर जमा होगई और उसी ने तुमको बिस्तर से उठा कर काम करने के लिये विवश कर दिया।

मैं यहाँ पर जो बात तुमको समझाना चाहता हूं वह केवल इतनी ही है। आलस्य और सुस्ती का सम्बंध प्रकृति से है। और वह यों ही रहता है जब तक कि कोई शक्ति उसपर अधिकार करके

या गतिमान, उसे चलने के लिये विवश न करदे। यह दशा भी विचार से उत्पन्न होती है। रात का विचार हमको सोने के लिए तैयार करता है। दिन का विचार काम की ओर लगाता है। जब तक एक विचार दूसरे पर अधिकार नहीं कर लेता तब तक तब-दीली नहीं पैदा होती। यह ही नियम रोग के इलाज की दशा में काम करता है। जैसे किसी व्यक्ति के मन में बीमारी का विचार पैदा हुआ। बीमारी किसी न किसी प्रकार गलतकारी का नतीजा है जिसको लोग पाप कहते हैं। इस बदकारी और बदपरहेजी की तह में बीमारी छिपी रहती है इस कारण आदमी बीमार होजाता है। पर जब उसको किसी प्रकार स्वस्थ होने का विश्वास दिलाया जाता है। वह विश्वास दवा के रूप में हो या विचार के रूप में, वह अच्छा होने लगता है।

जिस प्रकार पर्वत की ऊँचाई वायु की दिशा को बदल देती है। जिस तरह पर्वत के ढलवां किनारे नदियों के बहाव का फैसला कर देते हैं, उसी प्रकार जीवन की धार एक ओर से दूसरी ओर बदली जा सकती है। थोड़ा सा विरोध और मुकाबला करने की आवश्यकता है, तुम अपने मन में समझलो "विचार एक महान शक्ति है।" और इसको समझकर जब किसी काम में लगोगे तो तुम्हारा काम बिलकुल उसी गति से होने लगेगा जैसे बिजली और भाप की सहायता से रेल और जहाज चलते हैं। सब बातों की बुराई और भलाई का आधार केवल विचार है। स्वास्थ्य के विचार को भले प्रकार समझ लेने वाला अपनी शारीरिक शक्ति को पूर्ण बना लेगा और उसके आस पासके सामान सब उसके सहायक बन जायंगे।

इस बात का विश्वास मन में आजाना कि यह काम हमारी शक्ति में है और हम ऐसा कर सकते हैं, काम काज में उन्नति की

प्रथम सीढ़ी है। जिनमें विश्वास है वह ही वास्तव में सब कुछ कर सकते हैं। मनोरथ की सिद्ध, ईश्वर का दर्शन, ध्येय की सफलता, सब विषय में विश्वास का पहला दर्जा है।

तन्दुरुस्ती और सफलता का विचार मन में दृढ़ता से स्थित हो जाना विश्वास है। जिस समय मनुष्य यह समझ लेता है कि मैं कर सकता हूं उसी समय से इसका नाम सफलता की श्रेणी में लिख लिया जाता है।

इस विश्वास का मन में बस जाना ही विवश होने और न कर सकने की अवस्था पर अधिकार पाना है। इसका हाल बिलकुल उसी तरह का है जैसे ऊपर के उदाहरणमें नींद पर अधिकार करने का वर्णन है। और जब मनुष्य को विश्वास हो जाता है कि मैं एक काम कर सकता हूँ उसी समय से उसका जीवन एक विशेष प्रकार की क्रियात्मक शक्ति को अपना लेता है और दिन प्रतिदिन अपने ध्येय और प्रीतम से मिलाप का अधिकारी बनता जाता है। जो मनुष्य किसी प्रकार का आत्मिक अभ्यास कर रहे हों उनसे जाकर जरा पूछ तो देखो। हम क्या कह रहे हैं और वह तुमको सार तत्व का भेद समझा देंगे। जो बात आत्मिक विषय में सत्य है वह संसारी व्यवहार में भी सत्य है।

तुमने देखा होगा रेल चलाने वाला गाड़ी चलाने से पहले भाप की कुंजी को हरकत देता है। उसी तरह तुम भी यह सोच कर कि "मैं कर सकता हूँ" अपने काम में हाथ लगाते हो। वह भाप की एक जगह जमा की हुई शक्ति को एक विशेष स्थान की ओर फेरता है। तुम अपने विचार की इकट्ठी की हुई शक्ति को एक विशेष ध्येय की ओर फेरते हो। बात एक है काम करने के ढंग में अंतर है। यह कभी न कहो कि "मैं कुछ नहीं कर सकता।" यह विचार अत्यंत निकृष्ट है। इस पर अधिकार करने का भेद

यह है। अपने मन में पूर्ण रूप में विश्वास करलो "मैं सब कुछ कर सकता हूँ" और तुम्हारा जीवन हर दृष्टि कोण से उज्ज्वल और सुफल बन जायगा। इसलिये धारण करलो, विश्वास करलो, कि तुम सब कुछ कर सकते हो और विचार को एकाग्र करके, स्थिर करके, अंधकार, दुख, अज्ञान और अविद्या पर अधिकार जमा लो।

यह कठ उपनिषद की वाणी है "उठो, जागो जब तक सफल न हो जाओ कभी ठहरने का विचार मन में न लाओ"!

हमने "विचार" के महत्व को भले प्रकार से समझा दिया। याद रक्खो! यह विचार कभी मन में न आने दो कि, "मैं नहीं कर सकता" वर्ने नींद व आलस्य के गढ़े में गिरोगे।

यदि विश्वास न हो तो इसका भी अनुभव करके देख लो। जिस प्रकार संयमी पुरुष विश्वास करते ही अपने में उत्तेजना और साहस की फुरना का अनुभव करेगा उसी प्रकार वह मनुष्य जो इसके विपरीत सोचता है पराधीनता के बन्धन में फंस जायगा। किसी काम के करने से पूथम दो चार बार, बार २ कहो "मैं नहीं कर सकता" और तुम थोड़े समय में ही देखोगे तुम वास्तव में उसके करने के अयोग्य होगये। अब थोड़ी देर के लिये अपने शरीर की क्रिया शक्ति पर ध्यान करो। नस नाड़ी में आलस्य भर गया। हाथ काँपने लगे। कंधे झुक गये। पांव काँपते हैं। हृदय धड़कता है। आँखें फट रही हैं। चहरे का रंग पीला है। तुम ही तो थे जो पहले काम के लिये आये थे। पहले क्या हालत थी। शरीर के सब अंग फड़क रहे थे। हाथ काम करने के लिये व्याकुल थे। मन में काम करने की लालसा थी। पर अब न्यारी ही दशा है। कारण यह हुआ कि आलस्य या कायरता के विचार ने शरीर को, मनको, मस्तिष्क को, हाथ पाँव सबको बेकाम बना

दिया। आत्मा और तुम्हारे मन के अन्दर परदा पड़ गया। पहले तुम सीधे अपने आत्मा से विचार की शक्ति ले रहे थे। अब उससे अलग हो गये। आत्मा में अपार शक्ति है। केवल अज्ञान के आवरण को उठा देना है। और विश्वास से काम लेना है। जहाँ यह दशा हुई! फिर क्या होता है? तुम शक्तिशाली शासक और सफलता प्राप्त करने वाले हो जाते हो। यदि तुम सफल होते हो इसका कारण यह है कि तुममें विश्वास और सफलता के विचार ओत प्रोत हैं। यदि तुम असफल हो तो इसका भी कारण यह ही है कि तुमने अज्ञान के वश असफलता भय व कायरपने के विचार को अपने ऊपर अधिकार करने दिया है। हमारे जाति के जीवन में जो दोष और कमी दिखाई देती हैं वह केवल इसी कारण हैं।

खैर जो हुआ सो हुआ अब हर मनुष्य को अपना जीवन पलटने की आवश्यकता है। विचार करलो तुम सब कुछ कर सकते हो। आत्मा क्या नहीं कर सकता बार-बार इस मंत्र को जपते रहो। यह वास्तव में महामंत्र है। दो रोज चार रोज अनुभव करके देखो। तुम्हारी दशा अवश्य बदल जायगी। जीवन का रुख बदल जायगा। नस नाड़ियों में शक्ति आजायगी। जीवन संग्राम में पांव न कापेंगे। और मैदान में डट कर तुम बड़े से बड़े विरोधी कारणों को कुचल कर नष्ट कर सकोगे।

हम और जान के भय से रण को छोड़ दें! देखा नहीं कि सिंह तराई को छोड़ भागे!

जिस समय मनुष्य ऐसा सोच लेता है कि "मैं कर सकता हूं" वह आलस्य के टीले पर पाँव रखता हुआ जीवन के मंडल में आजाता है, और प्राण जो सब शक्ति के भंडार हैं इसको अपनी गोद में लेलेते हैं। वह न केवल सुरक्षित ही हो जाता है बल्कि

होजाते हैं जैसे मिट्टी का कमजोर ढेला चट्टान से टकरा कर चूर-चूर होजाता है। वह सब कुछ कर लेता है। जिस ओर दृष्टि करेगा उसी ओर सारा स्थूल जगत उसके पैर चूमने को शीश नवाता हुआ नजर आवेगा। प्रकृति माता का लाड़ला। सत्त पुरुष का युवराज! परमात्मा का पुत्र! कौन है? जो उससे उसकी बपौती छीन सकता है। वह इस समय तक दुखी दीन और गरीब है, जब तक असफलता और भूल चूक के विचारों के जाल में फंसा है। जहां उसको अपनी निज अवस्था का ज्ञान, आत्म शक्ति का विश्वास और परमात्मा पर विश्वास आया फिर सफलता का आकाश स्वतः ही अवनति और अविश्वास के बादलों से साफ हो जाता है। सूर्य का प्रकाश हर जगह फैल जाता है। और वह अपने आपको प्रकाश में देखकर कहता है:—

पड़े थे अंधकार के स्वप्न में हम। सहे ज़माने के सब रंजो ग़म।
खुली आंख अपनी जो देखा। यह ग़म ग़लत था यह गम ग़लत था।

उपनिषदों ने इस "प्राण" और इस आत्मा के विषय में कैसी सत्य और श्रेष्ठ शिक्षा दी है। पर हम इतने संसारी बन गये कि सार को नहीं समझते। आप जाल में फंसे और अपने साथियों को फंसा रहे हैं। ऋषि याज्ञवलक्य अपनी स्त्री मैत्री से कहते हैं। "हे मैत्री! यह ब्रह्म, यह वेद, यह सृष्टि, यह सम्पति अपनी निज दृष्टि से प्यारे नहीं है केवल आत्मा की दृष्टि से प्रिय हैं।" जो पुरुष अपने आत्मा को नहीं समझता ब्रह्म, वेद, सृष्टि और सम्पति आदि सब उससे फिर जाते हैं। और क्या यह सत्य नहीं है? आत्मा के ज्ञान से रहित लोगो! हमारे और तुम्हारे पतित होने का कारण केवल यही है कि हम आत्मा और आत्मा की शक्ति का ज्ञान नहीं रखते। जिनको आत्मा की शक्ति का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। वह सब पर अधिकार पालेते हैं। सब जगह

उनको आत्मा ही आत्मा दृष्टि में आता है। यह आश्चर्य की बात नहीं है। न शब्दों का गोरख धंधा है। याज्ञवल्क्य कहते हैं "जहां दो हों वहाँ दूसरा दूसरे को देखता, सुनता छूता और सोचता है। पर जहाँ एक है वहाँ कोई कैसे किसी को देखे सुने छूये और सोचे।" और क्या यह मिथ्या है? नहीं। जिस समय आत्मा के विचार थरथराने वाली धारोंमें बाहर निकलने लगते हैं। सब शक्तियाँ दब जाती हैं। यह स्थूल जगत उससे भरपूर हो जाता है। फिर वह किस से सहायता ले। किसका आधीन बने। वह सब कुछ हो जाता है। यह अति महत्त्व का तत्व है। याज्ञवलक्य फिर कहते हैं "हे मैत्री! यह आत्मा सोचने समझने और ध्यान करने के योग्य है।"

मेरे प्यारे पढ़ने वालो! तुम अपनी जाति (कौम) के लाभ के विचार से, साधारण मनुष्यों की दृष्टि से। संसार की भलाई के विचार से इस आत्मा और इस शक्ति पर विचार करना सीखो। अपाहिज सन्यासियों की भांति न विचारो। सार तत्व (असलियत) की ओर दृष्टि करो और इस लेख के पढ़ने के बाद ही मन में दृढ़ विश्वास करलो कि "आत्मा सब कुछ है, आत्मा सब कुछ कर सकता है, आत्मा के साथ किसी को विरोध और रोकने की शक्ति नहीं है।" और तुम इस विवेक विचार से अपने आप को शक्ति और ज्ञान की पवित्र गंगा में स्नान करते हुये पाओगे। जहाँ अज्ञान का मैल दूर हो जाता है। सत प्रकाश की झलक आ जाती है। सुख चैन और आनन्द का जन्म सिद्ध अधिकार जो हमारी बपौती है मिल जाता है। सत्य, तेज, सुन्दरता, सच्चे ज्ञान आदि से तुम परस्पर मिलोगे। कायरता, असभ्यता, अज्ञान, साहस हीनता जिनके कारण तुम दुखी व बदनाम हो रहे हो स्वतः ही दूर हो जायेंगे। मैंने सत का उज्ज्वल दृष्टि कोण तुम को

दिखा दिया। अब कभी न कहो "मैं यह नहीं कर सकता" बल्कि आत्मा के यथार्थ ज्ञाता के समान हजारों को सुनाकर कहो "मैं सब कुछ कर सकता हूँ।"

'कर सकने' का मन में विश्वास होना अपने पाँव आप खड़े होने और अपने ऊपर भरोसा रखने का नियम है! जो इस प्रकार समझता है वह आत्मसंयमी बनता है। अपने भुजबल पर भरोसा रखना उच्च शिष्टाचार वो सभ्यता के सर्व श्रेष्ट चिन्ह हैं। किसी की सहायता के आश्रयित न बनो! आत्मा किसी के आश्रय नहीं है। सुनो! बुलबुले शीराज़ एक फ़ार्सी कवि का कैसा जोरदार कथन है जिसका अर्थ है:—"खुदा की क़सम पड़ोसी की मदद भी स्वर्ग में नर्क के समान है।"

टेनसन इंगलैंड के महान कवि का वाक्य है:—

अपना मान आप करना, अपने निज स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना, अपने आपको नियन्त्रण (Control) में रखना, यह तीन बातें मनुष्य के जीवन को अपूर्व बल वो समराज्यधिकार की ओर अग्रसर करते हैं।

और यह तीनों उस पुरुष में मौजूद हैं। जो कहताहै "मैं कर सकता हूँ"। नवयुवकों को इन तीन महान् उपरोक्त गुणों को अपने में पैदा करना चाहिये, वह इस महामंत्र को नित्य प्रति बिना भूल के जपा करें। "मैं कर सकता हूँ" यह न कहो कि "मैं जानता हूँ, मुझको जरूरत है। और मेरी यह इच्छा है"। बल्कि यह कहो कि "मैं कर सकता हूँ"। मुझ में अपनी जरूरत आप पूरी करने की शक्ति है। इच्छा के अनुसार सफलता प्राप्त कर लेना मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है। जो मनुष्य बार २ ऐसा कहता रहेगा। बार २ इस तरह सोचता रहेगा। वह किसी समय में न केवल आप ही बन्धन से छुट जायगा बल्कि हजारों, लाखों और करोड़ों

को मोक्ष का देने वाला, निर्वाण दिलाने वाला और परोपकार करने वाला बनेगा। ब्रह्माँडी शक्ति उसकी है। वह ब्रह्मांडी शक्ति का है। वह अपार शक्ति उसको अपने प्रगट करने का यंत्र बना लेती है। यह वेदाँत का सिद्धांत है। उपनिषदों की शिक्षा का सार है। गीता के उपदेश का मूल है। मेरे नेक और आदरणीय पढ़ने वालो इसको अपने मन में धारण करलो ? मरलो ? और भला होगा।

ईश्वर से प्रार्थना है ! कि आप सब इस प्रकार अपने जीवन को सत के साँचे में ढाल सकें !

—❀:❀—

१०—अपनी निज सम्मति या अनुभव का सम्मान

संसार भिन्नता के दृश्यों का स्थल है। यहाँ कोई दो सूरतें कभी एक सी न दीखेंगी। न दो मनुष्य एक विचार के मिलेंगे। जब एक वृक्ष के दो पत्ते आपस में नहीं मिलते, हाथों की उंगलियां एक सी नहीं। तो संसार के और दृश्यों में एकता खोजना भूल है। क्या नहीं देखते एक व्यक्ति का हाल दूसरे से भिन्न है। और इस भिन्नता के कारण उनके दृष्टि कोण में भेद होना आवश्यक है। यही कारण है कि ऋषियों ने प्राचीन समय में मनुष्य के विश्वास और विचारों की भिन्नता पर कभी दोषारोपण नहीं किया। बल्कि उनको अवसर दिया कि वह अपनी चित वृत्तियों की इच्छा के अनुसार अपनी शारीरिक व आत्मिक उन्नति की गुत्थी को आप सुलझायें। और अपने दृष्टि कोण के अनुकूल कार्य करें। मनुष्य की उन्नति और अवनति का आधार अधिकतर इस बात पर है।

शरीर की इन्द्रियां वास्तव में आत्मा की खिड़कियाँ हैं और बाहरी जगत उसके विचारों की छाया है। यह संसार नाम

और रूप से अधिक मान नहीं रखता। और मनुष्य का मन और मस्तिष्क अपनी उन्नतिशील बुद्धि और निजी समझ के अनुसार उस सार तत्व के सम्बंध में अपना निर्णय दिया करते हैं। इसलिये हर व्यक्ति के लिये नितांत आवश्यक है कि दूसरों पर पूर्णतः भरोसा रखने के बदले अपनी निजी राय को भी दृष्टि में रक्खे। जिससे उसकी बुद्धि की जाँच के अतिरिक्त उसकी अपने जीवन के उद्देश में भी सफलता होती जाय! हम अपने चक्र के केन्द्र पर स्वतः ही मनुष्य रूप में खड़े हैं। इस कारण केवल दूसरों की राय या सम्मति पर नितांत निर्भर रहना भूल है। आखिर हम क्यों दूसरों के निर्णय या सम्मति के आधीन बनें। हम भी तो मनुष्य हैं। और मनुष्य के नाते हमको भी तो बुद्धि विवेक प्राप्त है। इस अपनी बुद्धि विचार को व्यर्थ बनाना क्या किसी दशा में अच्छा काम है? नहीं कभी नहीं।

विचारों का तबादला होता रहना अच्छी बात है। ऐसा आवश्य होना चाहिये। हर प्रश्न के भिन्न दृष्टि कोण हुआ करते हैं। और ऐसी दशा में उनकी निरख परख करना, औरों की सम्मति लेना, परम लाभकारी है। विशेषतः सामाजिक और निजी सम्बंध में ऐसे अवसर अधिक होते हैं। जिनकी बाबत औरों की सम्मति लेते रहना लाभदायक सिद्ध होता है। पर यह संसार उन्नति का स्थल है। भगवान श्री कृष्ण इसको कर्म क्षेत्र वर्णन करते हैं। यदि किसी को अपनी उन्नति का ध्यान है तो उसको चाहिये कि दृढ़ता और संयम से आप एक स्थान पर आरुढ़ हो रहे। जमकर बैठ जाय! कभी कभी जीवन पथ के मुख्य २ श्रेणियों को अकेला ही पार करे। राजा के समान स्वतन्त्र रहे और आवश्यकता अनुसार जहाँ कहीं जरूरत हो मेल मिलाप के सम्बन्धों को भी अभय होकर तोड़दे। यूरुप में एक कहावत प्रसिद्ध है

"सुनिये सबकी करिये अपने मन की" और फिर कहा गया है "अपनी करनी पार उतरनी"।

सदाँ हर बात में दूसरों की राय के आधीन रहना भारी कायरता और अपराध है। इससे व्यर्थ समय नष्ट होता है। तर्क-वितर्क करना पड़ता है। बार बार एक ही बात सबको सुनना होती है। और अपने हृदय का आँचल अकारण काँटों में उलझ कर टुकड़े २ हो जाता है।

जो लोग अपने इस मन की आदत के आधीन हैं अपना बहुत सा समय योंही व्यर्थ खो देते हैं। संसार में जो मनुष्य सफलीभूत होते हैं वह सबसे अधिक अपने समय का आदर करते हैं। और चीजें चाहे नष्ट हो जाँय, रुपया पैसा जाता रहे! वह इनके व्यर्थ के खर्च करने से नहीं घबराते। पर समय के खोने से उनको महान क्लेश होता है। उनका भरोसा अपने भुज बल पर होता है। वह समझते हैं अपने निजी हानि लाभों के प्रति दूसरों को क्या समझ है। हम ही अपने भविष्य को अपनी कोशिश से अच्छा और श्रेष्ठ बना सकते हैं। इस प्रकृति के मनुष्य चारों ओर देख कर अपने चित्त को स्थिर कर लेते हैं, और अपने अन्दर देख कर सोच कर, समझ कर खुद अपने लिये रास्ता निकाल लेते हैं।

जीवन हमको इसलिये मिला है कि हम बराबर उन्नति के मार्ग पर पांव रखते हुये चले जांय। और नित्य प्रति हमारी अवस्था में नये परिवर्तन पैदा हों। हम निज गौरव के आशय को समझ कर अपने आप को भव्य व्यक्तित्व के रूप में बदलते जांय। हमारी दृष्टि में औरों की बात का इतना महत्व नहीं है जितना अपनी बुद्धि और विवेक का है। तुम भी कभी न सुनो। न किसी प्रकार की प्रमाणिक बातों को सच्ची मानो। जब तक अपने अनुभव की कसौटी पर न परखलो। प्रमाणिक बातें एक ओर धरी रह

जाती हैं। विवेकी पुरुष अपना काम यों ही बना लेता है। अपनी बुद्धि विचार ही उन्नति की असली नींव हैं। और अंत में वह इस प्रकार का स्वतः प्रमाण बन जाती हैं कि फिर उसके अनुभव की काट छाँट में किताबी विद्या वालों की दलीलें और धार्मिक रीति रसम पोच जचने लगते हैं। जिनको इस प्रकार के काम करने अथवा साधन से सम्बन्ध रहा है, चाहे लोक के हों या परलोक के, शारीरिक हों या आत्मिक, वह भले प्रकार से समझ लेंगे कि हम क्या कह रहे हैं।

मगर साधारण मनुष्यों में यह बात नहीं होती क्योंकि यह कठिन परिश्रम, यत्न, साधन और करनी का विषय है। साधारण बुद्धि विवेक के लोग सदा इस परिवर्तन को पसन्द नहीं करते :—

लीक पुरानी ना तजें कायर कुटिल कपूत।
लीक पुरानी परिहरें शायर सिंह सपूत॥

अर्थ स्पष्ट हैं। शायर सिंह और सपूत पुरानी लीक नहीं पीटते अपने लिये नया रास्ता बना लेते हैं।

धार्मिक नये ढंगों के प्रचार में भी विरोध का भारी हुल्लड़ मच जाता है। क्योंकि साधारण बुद्धि के लोग उस सीमा तक नहीं पहुँच पाते जो एक उपदेशक का आशय होता है। वह बात-बात पर कहते हैं कि क्या पुराने लोग अयोग्य थे? जिन्होंने यह नियम बनाये थे। हम उत्तर देते हैं वह अयोग्य नहीं थे। पर वह समय और था। यह समय और है। और अब समय की आवश्यकता भी और है। पर क्या कायर कुटिल कपूत कभी मानने वाले हैं? सार और नये विचारों से उनको चिढ़ रहती है। फिर भी हम देखते हैं जिन में असलियत है, उसका प्यार है, उसका मान आदर है, वह कायर, कुटिल और कपूतों की अपेक्षा शायर सिंह और सपूत के समान अपना काम

बना ही लेते हैं। और नीची श्रेणी से ऊपर आकर सूर्य के समान चमक उठते हैं। ऐतिहासिक घटनायें ऐसे उदाहरणों से भरी पड़ी हैं। जिस उत्साही सफलीभूत पुरुष के जीवन का ध्यान देकर पढ़ोगे वहाँ ही तुम्हारी तृप्ति का सामान मिल जायगा।

इनको सफलता मिल गई क्योंकि इन में उन्नति व उपज की सामग्री प्राकृतिक, स्वभाविक और संसकारिक मौजूद थीं। इनके विचारों ने संसार में हलचल पैदा कर दी, और आप परिश्रम कर के उसके जान प्राण बन गये। और कुछ न कुछ परिणाम दिखा कर छोड़ा। इन में अपने भुज-बल पर विश्वास और भरोसा था। और उनको अपने मन के भावों पर अंकुश था और स्थिर चित थे।

विश्वास का होना आवश्यक है। मनुष्य क्यों किसी पुरुष की राय लेने जाता है? क्योंकि उसको अपने भुज बल पर भरोसा नहीं है। यह उसके संकोच का कारण है। कभी-कभी यह दशा अच्छी भी कही जाती है। क्योंकि जिनको अपने ऊपर बहुत भरोसा रहता है वह बिल्कुल बेपरवाह भी बन जाते हैं। इस प्रकार की बेपारवाही को हम ना समझी कहते हैं। पर यदि हम से पूछा जाय तो हम उस उदासीन और अपने ऊपर बिल्कुल भरोसा रखने वाले को उन मनुष्यों से हजार बार अच्छा समझें जो सुस्त आलसी कायर और पराधीन हैं। उदासीनता का काम इस आलस्य और काहिली की दशा से हजारों दर्जे अच्छा है, जो भय के भूत के कारण आगे बढ़ने में सकुचाते हैं। क्या बहता पानी ठहरे हुये जल से अच्छा नहीं है?

"साधू चलता रहे तो बहतर। नदी जल बहे तो बहतर"॥

प्रकृति पुकार २ कर कह रही है। बढो आगे चले चलो! पाँव पीछे न पड़े। इस पुकार के सुननेवाले पग उठाये धड़ाधड़ चले जा

रहे हैं। जो राह में रुकगये कुत्तोंके समान औरों के पाँवकी ठोकरों से वे मौत मरे। इस दुनियाँ में अनन्त उन्नति के दर्जे और धाट हैं। हर प्रकार की क्रिया कहीं न कहीं तुमको पहुंचा कर छोड़ेगी काम करने में तुम्हारी कोई भी हानि नहीं। यदि काम के करने में कभी गिर भी पड़ो तो कोई हर्ज नहीं। पर रुको नहीं चलते चलो। अन्त में कहीं अवश्य पहुँच कर रहोगे। तुम्हारी बिल्कुल हानि न होगी। कबीर सा० की वाणी है:—

मारग चलते जो गिरे ताहि न लागे दोष।
कह कबीर बैठा रहे ता सिर करें कोस।

हर प्रकार के रास्तों में ऐसी आफतें पैदा होती हैं। गिरते पड़ते हुये तुम सहज में अपने चलने को ठीक करते चलोगे। क्योंकि उससे अनुभव जागेगा धैर्य धरने की शक्ति आवेगी। संसार में हर जगह गिरना और उभरना है। जीवन के उत्तम और पवित्र बनाने के लिये इस बात की अधिक आवश्यकता है कि तुम गिर-गिर कर उठते रहो। बालक गिर-गिर कर आगे चलने फिरने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। इस दुनियाँ में हजारों लाखों और अनन्त लाभ के बहुत से साधन मौजूद हैं। केवल तुम्हारे इच्छा करने की जरूरत है। जहाँ इच्छा उत्पन्न हुई तुम स्वयं फलने फूलने लग जाओगे। उन्नति के करोड़ों मार्ग मौजूद हैं अनन्त साधन ऊंचे उठाने को हर समय सामने हैं। और यह सब के सब केवल तुम्हारे लिये हैं, यदि तुम इन से काम लेने और अपने ऊपर भरोसा रखने के भेद को समझ लो। इस सत्य का भले प्रकार समझ लो। जहाँ बहुत अधिक वाद विवाद का बाजार गरम होता है वहाँ सफलता प्राप्त करने की इच्छा नहीं होती। अपने आप को कमजोर न समझो। न बालकों के समान पुराने प्रमाण दो। क्योंकि समय बदलता है। हालात बदलते

हैं। काम करने के ढंग बदलते रहते हैं। निर्बल विचारों को कभी निकट न आने दो।

परस्पर का सहयोग और सहायता अति आनन्द की वस्तु है यदि अन्य व्यक्ति तुम्हारे काम में शरीक होते हैं, क्या कहना है? पर कभी-कभी औरों की सहायता नहीं भी मिलती, ऐसी अवस्था में किसी की कुछ चिंता न करो। अपनी राह लगा। सम्भव है लोग तुमको पक्षपाती कहें पर क्या परवाह है? व्यर्थ के बकवाद करने वाले सदा ऐसा ही करते चले आये हैं। क्या तुम नहीं देखते दुनिया के बहुत से मामलों के परिवर्तन केवल एक-एक व्यक्ति के अकेले परिश्रम के परिणाम थे। आदि में किसी ने भी उनका साथ नहीं दिया। पर जब काम का सिलसिला चल निकला हजारों लाखों मनुष्यों ने उनको अपनाना शुरू कर दिया। और उनके वचनों को विश्वास के साथ सत्य माना।

अपने काम के सिलसिले में हमको औरों के पसन्द आने न आने की इच्छा होती है। पर यह व्यर्थ का भ्रम है क्योंकि न उनकी दृष्टि में हमारे समान उदारता है, न उनके मस्तिष्क में उच्च विचार हैं। शिक्षा व उसके लाभ को न जानने के कारण वह उस समय तुम्हारे विचारों को भी अच्छी तरह न ले सकेंगे। हाँ उनको हमारी प्रशंसा करने के शब्द सुनकर, हमारा साहस किसी अंश तक अवश्य बढ़ता है, पर उनकी चापलूसी की बातों की तरफ तुम अपना ध्यान न दो। खुशामद पसन्दी की आदत बहुत बुरी है। इसकी हवा भी न लगने पावे। आवश्यकता केवल इतनी है कि तुम को अपने भुज बल पर पूरा-पूरा भरोसा रहे। मनुष्य को उदार बनना चाहिये। जिस से वह अपनी दुर्बलता और दृढ़ता को आप समझ सके। यदि यह दशा नहीं है वह धोखा खायेगा।

सफल व्यक्ति खूब जानते हैं कहाँ कहना चाहिये। कहाँ चुप रहना चाहिये। वह गपशप में समय को नहीं खोते। बल्कि स्वयं सोच समझ कर और परिणाम को देखकर एक राय कायम कर लेते हैं।

यहां इतना और स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है कि कोई व्यक्ति बाहरी मदद की अवहेलना भी न करे। ठीक ढंग से सम्मति अवश्य ले। पर इस सम्मति की जांच अपने मस्तिष्क की शक्ति से अवश्य कर लिया करे। हर बुद्धिमान मनुष्य में दो गुण जरूर होते हैं। एक तो वह विद्यार्थी के रूप में औरों से पाठ पढ़ा करता है। दूसरे सिखाता भी रहता है। वह सेवा भी करता है और कराता भी है। इसमें नम्रता भी रहती है और मान का ध्यान भी रहता है। इसकी दृष्टि बाहर भीतर दोनों ओर रहती है।

सफलता के हेतु हर मनुष्य को अपनी मस्तिष्क शक्ति और उसके अपार गुणों की समझ रखना आवश्यक है, पर अपनी कमजोरियों की ओर से आँख मीचना भी शोभा नहीं देता। हर मनुष्य में गुणों के साथ अवगुण भी रहते हैं। यदि थोड़ी देर के लिये इसको दृष्टि में भी न रक्खा जाय तो याद रहे मनुष्य सब गुणों को एक दिन में प्रगट नहीं कर सकेगा। हर काम के लिये समय की आवश्यकता है।

धैर्य और सन्तोष विशेश रूप में मनुष्य के सद्गुण हैं। असंतोष अकसर असफलता का कारण होता है, यदि संतोष और धैर्य्य से काम लिया जाय तो इसमें संदेह नहीं कि बड़ा उत्तम परिणाम पैदा हो सकता है, पर समय का इन्तजार फिर भी करना ही पड़ेगा।

यदि तुम किसी मनुष्य से अपने भविष्य की कामनाओं और इरादों को कहते हो, तो उसके साथ इतना पहले ही से और समझ लो

कि वह तुम्हारी भविष्य की उन्नति के विचार का, तुम्हारे भूत-काल के कर्म और स्वभाव अथवा चाल चलन से अवश्य ही अनुमान लगावेगा। क्योंकि उसको क्या पता है कि अब तुम्हारा मन उदार साधनों का भंडार है। उसकी दृष्टि अंदर की ओर कभी न जायगी। इस कारण सदैव और हर काम में सलाह लेना भूल है तुम्हारा मन और मस्तिष्क भविष्य की उन्नति के कर्तव्यों के भारी भंडार हैं। इसको तुम ही खूब जान सकते हो। दूसरों को इसकी क्या खबर है! सम्भव है तुम आने वाली उन्नति की सूरत की झलक देख सको। पर दूसरे व्यक्ति की दृष्टि केवल बीती हुई दशा पर रहेगी।

गपशप करना अच्छा है। इससे समय खूब कट जाता है। मन भी बदल जाता है, पर इस से अभ्यास और साधन से कोई सम्बन्ध नहीं है। कभी इस आदत से साहस का अभाव होजाता है। और मन और चित की शक्ति जिह्वा पर आकर उसी तरह नष्ट हो जाती है जैसे क़त रखते समय कलम का सिर खट से कट जाता है। और उससे अलग हो जाता है।

अपने निजी अनुभव और अनुमान पर विश्वास करो। जिन बातों को तुमने सोच लिया है उनका भरोसा करो। बुद्धिमानी और साहस के साथ समय को व्यर्थ नष्ट किये बिना काम में लग जाओ। और फिर देखो क्या होता है। यह नियम है। एक अवस्था के बाद दूसरी अवस्था अवश्य बदलती है। जो काम तुमने अभी खतम करने के इरादे से हाथ में लिया है उसका अन्त यहाँ ही तक होकर न रहेगा, तुमको इससे कहीं श्रेष्ठ काम करने को मिलेंगे। हमको केवल इतना करना है कि जिस काम को हाथ लगाया है उसको अन्त तक पहुँचा दें। तुम्हारा मस्तिष्क इस

करने के हेतु तुम्हारे समीप उपस्थित किये जायगे। देर न करो आज का काम कल पर न छोड़ो? यदि इस प्रकार काम होता रहेगा। तो तुम सीढ़ी से सीढ़ी ऊँचे जीनों पर सहज में पांव जमाते हुए चढ़ जाओगे। और बिना कठिनाई के सफलता प्राप्त करलोगे। मानुषी विचार मानुषी कर्म और मानुषी मन पसंदी को कभी भी अवहेलना न करो। इस पर खुद अभ्यास करो और औरों को अभ्यास करने को रुचि दिलाया करो। हम सब आत्मायें हैं। जिनको तुम पतित समझते हो वह भी आत्मा है। समय आवेगा जब इसके आवरण उतरेंगे। और वह भी आत्मा के तप तेज में चमक दमक के साथ जगमगा उठेगा।

ज़र्रे का भी चमकेगा सितारा। क़ायम जो ज़मीनो आसमां हैं।

—❀:❀:❀—

११—राग द्वेष

यदि किसी व्यक्ति से द्वेश रखते हो तो याद रक्खो वह तुम्हारे ही पास लौट कर आवेगा। और जितनी तुम औरों की बुराई चाहते हो उतनी ही तुम्हारी हानि होगी। तुम्हारे विचार बुरे होंगे मन मलीन होगा। और तुम्हारा अपना जीवन बिगड़ जायगा। घरों में जब लड़ाई झगड़े होते हैं तो स्त्री पुरुष एक दूसरे से बोल चाल बंद कर देते हैं। उन से पूछो? क्या द्वेश का घाव तुम्हारे मन को चोट नहीं पहुँचा रहा है! कितने मनुष्य हैं जो इस बुरी आदत से दुखी हैं, द्वेष करने से मनुष्य की मन और मस्तिष्क की शक्ति को महान धक्का पहुँचता है। और उसको मनुष्यता से गिर जाने का भय रहता है।

उचित है जो तुम से द्वेष रखते हैं तुम उनको प्यार करो। तुम्हारा जीवन इससे सुन्दर बनेगा। चित प्रसन्न रहेगा। और

तुम देवता बनते जाओगे। (हसद) ईर्ष्या से बचो यह तुमको कुरूप कर देगा। और मन को अपवित्र बना देगा। प्रेम और प्यार से, प्रेम के विचार तुम्हारी ओर आवेंगे। और तुम्हारे मन को निर्मल और पवित्र बना देंगे। जीवन सुख पूर्वक व्यतीत होगा। नहीं मनोगे तो इसके विपरीत फल भोगोगे। कबीर सा० की वाणी है:—

जो तोको काँटा बोये ताहि बोय तू फूल।
तोको फूल के फूल हैं वाको हैं त्रिसूल।

****

१२—परीक्षा और कष्ट

जिन बातों को संसार में हम जाँच और परीक्षा समझते हैं अथवा जिन मामलों को हम दुखों और कष्टों का नाम देते हैं। वह वास्तव में एक प्रकार की दैन हैं। जो हमारी आगामी उन्नति के लिये नये सामान उत्पन्न करेंगी! यह हमारी अत्यंत भूल और कायरता है जो हम उन से मुख मोड़ कर भयवश, भागने की चिंता में रहते हैं। किंचित हमारी दृष्टि ऊंची होती! यदि हम उस अटल नियम को जानते होते! जो जीवन की निरन्तर जंजीर को चलायमान करता रहता है। और यदि हमको अपनी दशा, अपनी योग्यता, अपने निजी अस्तित्व के परिवर्तन के भेद का ज्ञान होता। तो यह कष्ट, कष्ट न प्रतीत होते। हम इनको ईश्वरी दैन समझते! और इन से परस्पर मिलने को सहर्ष तत्पर होजाते अज्ञान और अविद्या ने बन्धन और संकीर्णता (तंग ख्याली) के जाल चारों ओर तान रक्खे हैं। आत्मा स्वतः ही मुक्त है। जहां कहीं और जब कभी तंग दिली के आवरणों या परदों के उतरने या उतारने का समय आता है। उथल पुथल और झकोले खाने का सामान पैदा हो जाता है और कष्टों से मुठ भेड़ होती है। यह

कली को चटखना है ! वह बिना खिले न रहेगी । उसका चटक कर खिलना ही प्रथम चरण है, जब ही फूल बन कर सुगन्ध देगी ! बीज के रूप में छिपे वृक्ष को, परदों को फाड़ कर खुली वायु के मैदान में आता है । इसका परदा फाड़ना ही वृक्ष के भविष्य को प्रगट रूप में उज्जवल करके उपस्थित करना, प्रथम चरण है । इसी प्रकार जितने कष्ट और दुख होते हैं । जितनी आपत्ति विपत्ति भोगी जाती हैं, वह प्रकृति के अटल नियम में उन्नति और सुधार के सर्वोपरि और श्रेष्ठ साधन हैं । जब किसी जाति के उन्नति के प्रमाणुओं में फैलने बढ़ने की शक्ति आजाती है । फिर वह रोकने से नहीं रुक सकती । न उसको कोई कैद कर सकता है । न जंजीर और बेड़ी डाल कर जकड़ सकता है । यह ही हाल व्यक्तिगत रूप में मनुष्यों की उन्नति का समझना चाहिये ? उन्नति का नियम एक है । दो बातें नहीं हैं । केवल जाति भेद है । चर, अचर, पशु, मनुष्य, देवता महात्मा इत्यादि में हर जगह उसके नियम में समानता दिखाई देगी । और यह उन्नति या सफलता के परमाणु कहीं बाहर से नहीं आते हैं, बल्कि हम में आदि से मौजूद हैं ।

बालक माता के उदर से बाहर आता है । अंधेरी कैद के बाहर आता है । आते समय उसको दुख की अवस्था से गुजरना पड़ता है । इस कारण वह पैदा होते ही रोने लगता है । पर उसने उन्नति प्राप्त करली । इसी प्रकार जब उसके दांत निकलने लगते हैं । उन्नति की दूसरी अवस्था आती है । इसमें भी उसको दुख होता है । इसी प्रकार जब वह बढ़ने लगता है तब वह पतला हो जाता है । पर वह उन्नति के मार्ग में है । यहां तक मनुष्य की स्वाभाविक गति इस प्रकार काम करती है कि अधिक कष्ट सहन प्रतीत नहीं होता । क्योंकि बालपन में (तंग ख्याली) संकीर्णता

नहीं रहती। इससे आगे मनुष्य को नये नये उत्तरदायित्वों से काम पड़ता है। प्रकृति या स्वभाव तो अपना काम करना ही चाहेगा। पर यह अलपज्ञ और तंग खेयाल बनकर अकुलाता है। और व्यर्थ के बंधन में पड़ता है। किंचित इसकी गति वैसी ही होती जैसी आदि में शुरू हुई थी। तो कभी व्याकुल होने का अवसर न आता। वह काल की गोद में जाते समय भी खुश रहता! क्योंकि मृत्यु या काल नाश हो जाना नहीं है। बल्कि अमर जीवन के द्वार की कुंजी है।

तितली की जीवन व्यवस्था जिसको आप इतनी सुन्दर और वृक्षों के फूल पत्तों से खेलते देखते हो एक अति मनोहर इतिहास है:—प्रथम अंडा पैदा होता है। अन्डे से कुरूप कीड़ा निकलता है। जो अन्डा तोड़ने के परिश्रम के कारण काँप रहा है! यह कीड़ा कुछ दिनों तक यों ही रेंगता रहता है। पर थोड़े ही दिनों के बाद इसमें विशेष प्रकार की शक्ति आजाती है। और देखो जब परिश्रम करके उस कुरूप परदे को फाड़ देता है। नन्ही सी सुन्दर तितली काँपती हुई बाहर आजाती है। और फिर अपने मनहार और मोहने रूप में उड़ती हुई गुलाब की पंखड़ियों पर नाचने लगती है। आप देखकर चकित वो आनंन्दित होते हो! तितली का यह मनोहर हेर फेर केवल परदों के उतरने से हुआ है! और उसको ऐसी हालतों से गुजरना पड़ा है जिनको हम और आप भूल से परीक्षा, जाँच और कष्ट कहते हैं।

कौन व्यक्ति है जो परदों के हटाने का इच्छुक न होगा? पर यह परदे उस समय तक कैसे उतर सकते हैं? जब तक जीव हाथ पाँव न मारे। परदे बिना उतरे हुये रह नहीं सकते। आत्मा स्वाभाविक ही मुक्त है। कौन है जो उसे बन्धन में रख सके। पर हम जो अज्ञान के अनेक परदों से ढके हुये हैं व्यर्थ और बिना जरूरत

घबराते हैं। कल्पित मानसिक कष्टों की चिंता गले का हार बन जाती है। और हम अज्ञानवश मुक्ति के विशाल और खुली वायु में सैर करने से झिझकते हैं। यदि हम थोड़ा भी अपने निज सरुप का ज्ञान रखते होते! तो यह दशा कभी न होती। प्रकृति को अपने अनुकूल बना कर बालक वा तितली के समान एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर उछलते और कूदते हुए चढ़ जाते! और शान्ति के साथ अपने मनोरथ को प्राप्त कर लेते! हम अज्ञानके वश हैं। इन्द्रियों के आधीन हैं। और वह जिधर चाहते हैं नाच नचाते हैं। कृष्ण भगवान का उपदेश है:—"मनुष्य इन्द्री विषयों का ध्यान करता है। उनसे नाता जोड़ लेता है। इस सम्बंध से इच्छा होती है, इच्छा से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से भ्रम होता है, भ्रम से स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है। स्मरण शक्ति के अभाव से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। बुद्धि भ्रष्ट होने से वह नष्ट होजाता है। पर जिसने अपने मन में संयम कर रक्खा है, वह इन्द्रियों के भोग-विलास में रहता हुआ भी उनके राग द्वेश के जाल में नहीं आता। और आत्मावस्था की दशा में आकर शांति को प्राप्त कर लेता है। शांति से उसके सर्व दुक्खों का नाश हो जाता है और बुद्धि दृढ़ रहती है।"

(भगवद् गीता अध्याय २ श्लोक ६२, ६३, ६४, ६५)

यह सार है जिसका हृदयांकित कर लेना हमारे लिये परम उपयोगी है।

मनुष्य के सब कष्ट केवल अज्ञान के कारण हैं। इसको यदि यह प्रतीत होजाय कि वह आत्मा है। वह सृष्टि का रचने वाला है और उसके नियम पर अपना अधिकार जमा सकता है, तो फिर उसके लिये सदा को दुख और कठिनाई का अंत होजाता है।

सृष्टि का उद्देश्य उन्नति है। जो व्यक्ति जिस प्रकार की उन्नति

...री शक्ति था तो उसको अपने भीतर ... का यत्न ...ता है या बाहर निकाल देती है। घाव के साथ मरहम, दुख के साथ सुख, कष्ट के साथ आराम, बन्धन के साथ मुक्ति, यह तुम को पग-पग पर मिलेंगे। यह कभी न सोचो कि हम दवा के आधीन हैं। दवा केवल हमारे स्वास्थ के लिये सहायक का काम करती है। यह कभी न कहो कि हमको कोई व्यक्ति अधिकार और सुख दे सकता है। यह सब कुछ हमारे अन्दर है और हमारा अपना है। परमात्मा के पुत्रो! तनिक अपनी आत्म सत्ता का भी विचार करो। तुम साहस हो, शान्ति हो। शक्ति हो। भ्रम और संशय की भींत को तोड़ फोड़ डालो। जहाँ यह गिरी तुम अपने निजी तेज के साथ चमक उठोगे। और तुम जिस शक्ति, जिस मान बड़ाई, और प्रतिष्ठा की पूजा या सेवा का दम भरते थे वह स्वयं तुम में प्रगट हो जायगी।

न देखा वह कहीं जलवा जो देखा मन के अन्दर में।
बहुत मसजिद में सिर मारा बहुत पूजा की मन्दिर में।

आओ इस गूढ रहस्य की समस्या की ओर शान्ति से विचार करें!

आत्मा के ऊपर कोष चढ़े हुये हैं। इसका उतारना जरूरी है। जब एक कोष के उतारने का समय आयेगा। बेचैनी चिन्ता और विषाद होगा। बिना इसके कुछ न होगा। यदि यह न हो फिर परिश्रम कोई क्यों करे। बिना हाथ पैर मारे कभी किसी के कुछ हाथ नहीं आता। आलस्य को छोड़ो? जिसकी धुन लगी हो उसी ओर हो जाओ? दांये बांये मुड़ कर न देखो। और सफलता और विजय तुम्हारा पांव चूमेगी।

इतिहास क्या कहता है? जिन जातियों ने बल और पराक्रम के साथ परिश्रम किया, वह उन्नति के शिखर पर चढ़ कर सूर्य के समान चमक उठीं। जो जाति सुख चैन ही को अपना लक्ष्य बना

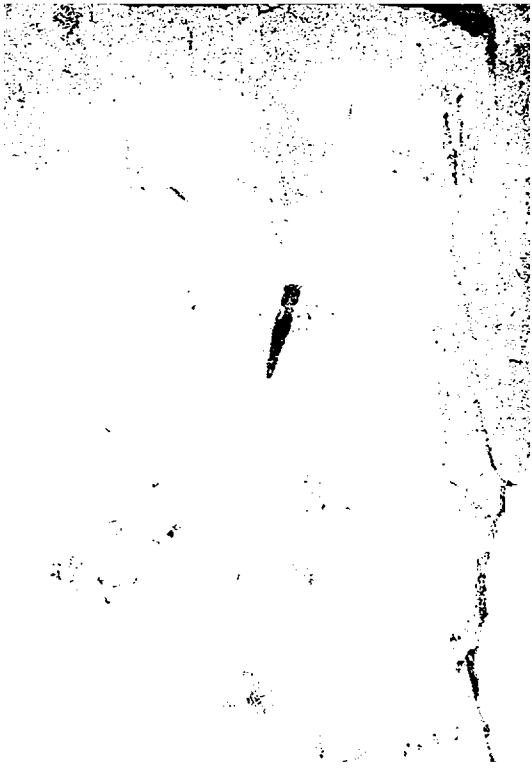

कर दुख वो कष्ट के नाम से घबराती रहीं, प्रकृति के घूमने वाले चक्र ने उनको निर्दयता के साथ पीस डाला। तुम अब तक जीवित हो। इसका कारण केवल यह है कि तुम कष्ट और विषाद से घृणा करते हो। और जीवन के हर दृष्टि कोण में जिधर घुस जाते हो उधर ही आश्चर्य जनक दृश्य दिखा देते हो।

आत्मा में निरशा नहीं है। आत्मा आशा है। इसका विचार अंधेरे में प्रकाश का काम देता है, आशा को अपना इष्ट बनाकर बदी से भिड़ जाओ ? और उसको नेकी के रूप में बदल डालो ? पुण्य पाप केवल उपेक्षिक शब्द हैं। उनको अपने आधीन करलेना केवल तुम्हारे पुरषार्थ पर निर्भर है। डरो नहीं ? आत्मा के लिये कहीं भी डर नहीं है, शस्त्र इसको काट नहीं सकते। आग इसको जला नहीं सकती। पानी इसको भिगो नहीं सकता। वायु इसको सुखा नहीं सकती। भग०गीता अ०२ श्लोक २३। फिर किसका भय है ?

दुनियां की और जाति यदि कष्ट से घबराती हों तो उनको घबराने दो। तुम न घबराओ। राम ने अकेले केवल अपने भुजा बल से रावण का सामना करना चाहा। प्रकृति ने स्वयं उनका साथ दिया और वह विजयी हुये। और यदि तुम आंख रखते हो तो सब जगह घर बाहर तुम को राम के सच्चे विजयी होने के दृश्य खुले रूप में दिखाई देंगे। बुद्ध देव अकेले ही बदी को नेकी से दबाने चले। दुनिया ने उनका लोहा माना। यदि तुम कान रखते हो तो संसार में अब तक भी तुमको उनकी विजय का डंका बजता हुआ सुनाई पड़ेगा। क्या इन पर कष्ट नहीं आये ? पर हमारे पूज्य पूर्वजों ने बेपरवाही से उनका स्वागत किया। संसार में हमारी जाति का भी कुछ लक्ष्य (मिशन) है। हमको संसार के सुखों का उत्तराधिकार नहीं मिला, हम कष्टों के सामना

दिखाईं कि हम इस तरह विजय पाते हैं। तुम कभी राजा महाराजा, धनी, रईसों की संतान होने का गर्व न करो ? क्योंकि हममें से हर एक हिंदू ऋषि कुलकी संतान है। हमारे गोत्र ऋषियों से हैं। हम पूज्य साधुओं की संतान हैं। जो शारीरिक सुख चैन और भोग विलास को सदा अस्वीकार करते रहे। हमको भी अपने पूर्वजों के पथ पर चलना है। संसारी जीवन हमारा इष्ट नहीं है। रूसी और यूनानियों ने इसीको सब कुछ समझा मर-मिटे। जो इसको सब कुछ समझते हैं मर मिटेंगे। यदि तुम भी ऋषियों की संतान होने का विचार छोड़कर इसी को सब कुछ समझोगे मर मिटोगे।

हम अब तक संसार में जीवित हैं, इसका कारण यह है कि हमारी जाति का दुनिया में कुछ निश्चित उद्देश्य है। और वह उद्देश्य यह है कि हम अपने मन, कर्म, वचन, चलन, सभ्यता आदि से साबित कर दिखायें कि हम आत्मा हैं। जो अनादि, अविनाशी अचल, सर्व व्यापक अमर और जिसको सुख दुख आदि लेशमात्र भी छू नहीं सकते।

आओ जो कुछ दुख दर्द सिर पर आवें उनका साहस और धैर्यपूर्वक सामना करें! और उनको अपने पैरों तले सीढ़ी बनाकर ऊपर की ओर उन्नति के शिखर पर चढ़ जाँय। और अपने पूर्वजों के समान संसार को शिक्षा देने के अधिकारी बनें! यह तुम्हारा उत्तराधिकार, जन्म सिद्ध अधिकार है जिसको कोई भी तुमसे छीन नहीं सकता।

यदि अपने दोषों पर विचार करना सीख लें तो उपरोक्त उत्तराधिकार प्राप्त करने में देर न लगेगी।

अपनी ओर निहारिये औरन सों क्या काम।
सकल वासना त्याग कर भजिये गुरु का नाम।

जब मनुष्य अपनी बुराइयों पर दृष्टि रखने लगता है तो उनका अनुभव हो जाता है, और दोषों की जड़ कटना शुरू हो जाती है और वह अपने सुधार में लग जाता है। अपने दोषों का ज्ञान होते ही वह धीरे-धीरे उनको छोड़ने लगता है। जो अपने अवगुण विचारते रहते हैं वह भविष्य में दूसरों के दोष नहीं देखते। प्रेम व प्यार का व्यवहार करने लगते हैं और उनके सुधार में बाधा नहीं होती। जब अपने दोष देखते-देखते स्वभाव बन जाता है तो मन का बर्तन खाली होने लगता है और बुरे विचारों की जगह अच्छे विचार ले लेते हैं। वह बुरे से अच्छा हो जाता है। और वह दिन प्रति दिन उनके निकालने के उपाय सोचता है। इसलिये मन कर्म और, वचन से गुण ग्राही बनना आवश्यक है। दोष यदि देखोगे दोषी बन जाओगे। एक दिन अपने दोषों को देखते-देखते ऐसे बन जाओगे कि तुम में दोष नाम को भी न रहेंगे। जहाँ इस विचार में पनापन आया नहीं कि तुम को ईश्वर भक्त बनते देर न लगेगी। आप तरोगे और दूसरों का भी भला कर सकोगे। मालिक करे! हम सब अपने अवगुण खोज कर निकालने के प्रयत्न में लग जांय! जो ईश्वरी सहायता दौड़ी चली आवे।

卐 वन्दना 卐

सहज में भव पार करदो नाव है मंझधार में।
है तुम्हारे हाथ रक्षा हूँ दुखी संसार में॥
शब्द साखी क्या सुनू मैं सुनते-सुनते थक गया।
मुझको जीता अब न समझो जीते जी मैं मर गया॥
तुमने मेरी बांह पकड़ी अब तुम्हीं को लाज है।
सर्व समरथ दाता सतगुरु तुम से अटका काज है।

इति शुभम्

राघव प्रिंटिंग प्रेस अलीगढ़।

वन्दना

करूँ बीनती दोऊ कर जोरी ।
अर्ज सुनो राधास्वामी मोरी ॥
सत पुरुष तुम सतगुरु दाता ।
सब जीवन के पितु और माता ॥
दया धार अपना कर लीजे ।
काल जाल से न्यारा कीजे ॥
सतयुग त्रेता द्वापर बीता ।
काहु न जानी शब्द की रीता ॥
कलियुग में स्वामी दया विचारी ।
प्रगट करके शब्द पुकारी ॥
जीव काज स्वामी जग में आये ।
परमारथ के काज सिधाये ॥
तीन छोड़ चौथा पद दीना ।
सत नाम सतगुरु गति चीन्हा ॥
जग मग ज्योति होत उज्यारा ।
गगन सोत पर चन्द्र निहारा ॥
सेत सिंघासन छत्र बिराजे ।
अनहद शब्द गैब धुन गाजे ॥
क्षर अक्षर निःअक्षर पारा ।
बिनती करे जहाँ दास तुम्हारा ॥
लोक अलोक पाऊँ सुख धामा ।
चरण शरण दीजे बिश्रामा ॥
करूँ बीनती……………………

शिव

ज्ञान-ध्यान-भक्ति भाव, प्रेम अनुराग की प्रभावशाली ग्रन्थमाला

आपको घर बैठे सतसंग का लाभ देगी

परम संत शिवव्रतलालजी महाराज दाता दयाल

की

अद्भुत और अनमोल लेखनी के उद्गारों की विचार धारा

सम्पादक

नन्दूभाई टिम्बरमर्चेंट

निजामाबाद हैदराबाद दखन

प्रकाशक

शिव साहित्य प्रकाशन मंडल

दयाल धाम, पोस्ट दयालनगर जिला अलीगढ़ उ० प्र०